छत्रपतिसाम्राज्यम्

CHHATRAPATISAMRAJYAM

ऐतिहासिकनाटकम्

Historical Drama

•

रचयिता

Written by

स्व० मूलशङ्करमाणिकलालयाज्ञिकः

Late Moolshanker Maniklal Yajnik

अवकाशप्राप्तप्राचार्यः, संस्कृतमहाविद्यालयः, बड़ौदा

•

हिन्दी अनुवादकः

Hindi Translation by

शिवशङ्कर त्रिपाठी

Shiva Sankcr Tripathi

•

संपादकः

Editor

प्रभात शास्त्री

Prabhat Shastri

प्र का श न व र्षः

अगस्त

१९ | ७९

प्रकाशक : | मुद्रक :

देवभाषा प्रकाशनम् | देववाणी मुद्रणालयः

इलाहाबाद-६ | इलाहाबाद-६

संवत् | २०३६

मूल्य : सात रुपये

रचयिता

जीवन परिचय

श्रीमूलशङ्करमाणिकलालयाज्ञिक गुर्जरगिरास्तम्भ गुर्जरप्रदेश की विभूति और संस्कृतसाहित्य के ऐसे गौरव हैं, जिससे हम गर्व के साथ कह सकते हैं—संस्कृत समृद्धभाषा और उसका साहित्य जीवन्त है। समग्र संस्कृतसाहित्य पौराणिक कथानकों पर आधारित काव्य, नाटक एवं आख्यायिकाओं से भरा है, कवियों ने इतिहास सम्बद्ध विषयों को अपनी कृति में स्थान कम दिया है। जिस प्रकार १०वीं ११वीं शती के श्रीपरिमल पद्मगुप्त ने 'नवसाहसाङ्कचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना कर नयी परम्परा का श्रीगणेश किया, उसी प्रकार इस बीसवीं शती में श्रीयाज्ञिक जी ने ऐतिहासिक नाट्यकृतियों से संस्कृत साहित्य के अभाव की पूर्ति की।

श्रीयाज्ञिकजी का जन्म गुर्जर प्रदेशान्तर्गत खेडा जनपद-स्थित नडियाद ग्राम में ३१ जनवरी १८८६ में हुआ। पिता का नाम माणिकलाल और माता का नाम अतिलक्ष्मी था। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा नडियाद में प्राप्त करने के पश्चात् उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए बड़ौदा गये। बड़ौदा कालेज के तत्कालीन प्राचार्य श्रीअरविन्द घोष के आचार्यत्व का सौभाग्य और मेधा एवं अध्यवसाय के संयोग से श्रीयाज्ञिकजी ने बी० ए०. की परीक्षा उत्तीर्ण की। कौटुम्बिक उत्तर-दायित्व के कारण उन्होंने बम्बई के इण्डिया स्पी० सी० बैङ्क में सर्व-प्रथम सेवा प्रारम्भ कर दी, फिर इन्दौर भड़ोच आदि विभिन्न स्थानों में विविध पदों पर कार्य करने के बाद १६२४ में शिनोर में शिक्षक के रूप में सेवारत हुए। वहाँ से फिर ३० वर्ष की आयु में राजकीय

संस्कृतकालेज वड़ौदा में तत्कालीन महाराज सयाजीरावजी के आमन्त्रण पर प्राचार्य पद पर आसीन हुए। सोलह वर्ष पर्यन्त महाविद्यालय के प्राचार्य रह कर न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि समग्र शास्त्रों के जिज्ञासु छात्रों को वाणी-सुधा-रस-धार से तृप्त और पारंगत किया। साथ ही दस साल महेसाणा के टी० जे० हाईस्कूल में सहायक शिक्षक के रूप में भी रहे। यहाँ से अवकाश प्राप्त होने के पश्चात् जीवन के शेष दिवस उन्होंने नडियाद में व्यतीत किया और वहीं १३ नवम्बर १९६५ में अपनी पाँच पुत्रियों को छोड़कर दिवंगत हो गये।

श्रीयाज्ञिकजी की संस्कृतभाषा और साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि थी। वह अध्यवसाय और मनन के परिणामस्वरूप उसके अधिकारी विद्वान् हुए। यही कारण था कि उनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर वड़ौदा नरेश महाराज सयाजीराव ने उन्हें प्रसिद्ध संस्कृतकालेज के प्राचार्य-पद पर आसीन किया था एवं वाराणसी के विद्वत्समाज ने उन्हें 'साहित्यमणि' की मानद उपाधि से विभूषित किया। सरस्वती और लक्ष्मी के जन्मजात विरोध के कारण श्री याज्ञिकजी को जीवन-पर्यन्त निर्धनता से संघर्ष करना पड़ा। तथापि साहित्य-रचना की उत्कट अभिलाषा के फलस्वरूप उन्होंने गुर्जर तथा संस्कृत-साहित्य को अपनी कृतियों से समृद्ध किया। गुर्जरप्रदेश के साहित्य-सर्जकों की दृष्टि नाटक रचना की ओर नहीं गयी थी, श्रीयाज्ञिकजी ने अपनी कृतियों से साहित्यिकों को आकर्षित कर दिया और साहित्य-समाज में एक नयी परम्परा का श्री गणेश हुआ। उनके पश्चात् अन्य कई नाटककारों का प्रादुर्भाव भी हुआ। इनकी संस्कृत कृतियाँ—१. छत्रपतिसाम्राज्यम् २. संयोगितास्वयम्वरम् ३. प्रतापविजयम् और गुर्जरभाषा की कृतियाँ—१. हर्षदिग्विजयम् (नाटक) २. नैषधचरितम् ३. तुलनात्मक धर्मविचार ४. आपण प्राचीन राज्यतन्त्र '५. (गुजराती अर्थ सहित) सत्यधर्मप्रकाश। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण पर आधारित

'पुराणकथातरंगिणी' नामक एक कथा पुस्तक भी इन्होंने संस्कृत में लिखी थी। गुजराती में भी एक कृति 'मेवाड़प्रतिष्ठा' है।

संस्कृत की नाट्यकृतियाँ इनके संस्कृत महाविद्यालय के आचार्यत्व काल (१९२६-१९३३) में ही प्रकाश में आ गयी थीं। क्रमानुसार सन् १९२८ में सयोगितास्वयम्वरम् १९२९ में छत्रपतिसाम्राज्यम् और १९३१ में 'प्रतापविजम्' का प्रकाशन हुआ। नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

संयोगितास्वयम्वरम्—इसमें प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान और राजकुमारी संयोगिता की प्रणय-कथा निवद्ध है। छत्रपति-साम्राज्यम्—इसमें महाराज केशरी छत्रपति शिवाजी के जीवन और उनके शौर्यपूर्ण कार्यों एवं तत्कालीन यवन-सम्राट् की दुर्नीति के विरुद्ध संघर्ष और अन्त में स्वराज्यस्थापना की घटनाओं को आवद्ध किया गया है। प्रतापविजयम्—जैसा कि नाम से ही आभासित है, इस नाटक में मेवाड़ केशरी महाराणाप्रताप सिंह का जीवन-प्रसंग उल्लिखित है। यह याज्ञिकजी की नाट्यकृतियों का संक्षिप्त परिचय है।

वैदर्भीरीति एवं भारती वृत्ति में लिखित इस नाटक की प्राञ्जल-परिष्कृत भाषा, इसके भाव-प्रवण चित्रण हमें अनायास ही एक सफल नाटक प्रणेता का स्मरण करा देते हैं। रसाभिव्यक्ति और अलङ्कारों का प्रयोग सहजतः हुआ है। अर्थान्तरन्यास, रूपक, दृष्टान्त, अपह्नुति, निदर्शना, उपमा, अनुप्रास, और विषम आदि अलङ्कारों का प्रयोग विशेषतः देखने को मिलता है। साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से नाटक के प्रत्येक अङ्क में आये गीत, प्रकृति चित्रण-सम्बन्धी स्थल, वीररसाभिव्यक्तिपूर्ण छन्दों का काव्यत्व उल्लेखनीय हैं। प्रस्तावना के पश्चात् नाटक का प्रारम्भ वीर-भाव पूर्ण कथनों से होता है। प्रस्तावना का गीत जिसमें वर्षा ऋतु का वर्णन—'विशाल धरती जल का पूर्णरूप से आस्वादन करने लगी, चञ्चल मेघों का दल इधर-

साहित्यिक-सौष्ठव एवं मूल्याङ्कन

उधर घूम रहा है। लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उच्चभाग में शरण ढूढने लगा। जलबूदों के भार से वृक्ष-समूह झुक रहा है, विशाल सागर उफनाने लगा है। बादलों का समूह देखकर, मनुष्य शोक-रहित और अब आनन्दित हो रहे हैं।' कितना स्वाभाविक और हृदयहारी है।

प्रकृति-चित्रण विषयक वर्णनों को पढ़ते समय हमारा हृदय बलात् उसके भावों में रमकर उपस्थित उपादानों के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए उत्कण्ठित हो उठता है और हमें वे प्राकृतिक उपादान निर्जीव निसर्ग वस्तु नहीं अपितु जीवन्त-प्रेरणा स्रोत से प्रतीत होते हैं—'पर्वत के ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और घासों से ढँके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं। इससे सीधे हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तों को लाँघा तथा कुटिल शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।'—(अंक ७।१)। उदय होते सूर्य की रक्तवर्ण प्रकाश बिखेरनेवाली किरणों का प्रसार हो रहा है, देखिए—

अपास्य दूरं मलिनां तमस्विनीं, क्षणेन तिर्यक् प्रसृतैर्नवांशुभिः।
लताप्रतानाम्रनिकुञ्जमण्डिता, दिवाकरेणारुणिता वनस्थली ॥
—अंक २।२

सूर्य ने अपनी नवकिरणों के प्रसार से क्षणमात्र में ही रात्रि के मलिन अन्धकार को दूर करके 'लता' आम्रमंजरी और निकुंज से विभूषित वनस्थली को रंजित कर दिया। तेजस्वी विशाल हृदय पुरुषों की महत्ता और लोकमंगल-भावना के प्रसार का उदाहरण दोपहर के पूर्ण उदित सूर्य से उपस्थित किया गया है—

उद्भास्य शैलशिखरोच्छ्रितपादपाग्रैः,
तेजोनिधिः किमुदितो विरमेद्विवस्वान्।
अभ्युद्गतो गगनमध्यपदं क्रमेण,
धाम्ना निजेन निखिलं भुवनं चकास्ति ॥
—अंक २।३

'क्या सूर्य उदय होकर पर्वत की चोटियों पर उगे हुए वृक्षों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम ले लेता है ? नहीं; वह धीरे-धीरे गगन के मध्य तक पहुंच कर अपनी किरणों के प्रकाश से समस्त जगत् को ही प्रकाशित करने लगता है।' 'पर्वत की चोटियाँ' सघन हरित-वृक्षावली, हवा के चलने से वृक्ष-समूह के पत्ते अपनी शाखाओं के साथ आन्दोलित हो रहे हैं, सारा वन जैसे गम्भीर सिन्धु हो, हिलोरें ले रहा हो—'पर्वत के पार्श्व में वृक्ष, गुल्म और लता-वितान के कारण गहन वन जिसमें सर्वत्र प्राणियों का निवास है, वायु से चलने के कारण समस्त वन समुद्र की समता को प्रकट कर रहे हैं।' (अंक ४।२०)। विशाल-गड दुर्ग अपनी उच्चता और दुर्जेयता के कारण कवि के लिए ऐरावत गज के समान प्रतीत होता है—' यह विशालगडदुर्ग, अपनी विशालता, ऊँचे-ऊँचे गुम्वदों के कारण, उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूड़ की भाँति अग्रभाग वाला, दुराक्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से शोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा धारण कर रहा है। [अंक ५।१], गाँव, नगर की निर्मलता रमणीयता का दिग्दर्शन देखिये किस अनासक्त भावना से कराया गया है।

लुलितपथिकनेत्रे पूरयित्वा रजोभि-
र्वसनमपहरन्तो लुण्ठकाश्चक्रवाताः।
जनपदपुरमार्गे बंभ्रमन्तो यथेच्छं,
वियदभिघनभीता उत्प्लवन्ते समन्तात्

—अंक ५।११

वर्षा का समय है। हवा चल रही है। कवि का कथन—ग्राम और नगरों के मार्ग में बवण्डर [तेजवायु] स्वेच्छापूर्वक विचरण करता, बादलों सा भयभीत चारों ओर से उठकर आकाश की ओर प्रस्थान कर रहा है, और इस प्रकार यह बवण्डर एक लुण्ठक [लुटेरा] के समान श्रान्त पथिक की आँखों में धूल झोंककर उसके वस्त्रों का अपहरण कर रहा है। इतना ही नहीं एक स्थान पर पर्वत की उच्च चोटियाँ, सघन वृक्षावली और निर्झर आदि, कवि की दृष्टि में शिवराज

के लिए प्रवल दुर्ग सदृश प्रतीत होते हैं—पर्वत की ऊँची-नीची धरती उसकी गुफाएँ, नाना प्रकार की लताओं और वृक्ष से सुशोभित वन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित होनेवाले निर्झर ये सभी आपके लिए सुदृढ़ दुर्ग के रूप में और शत्रु के लिए बाँधा-स्वरूप स्थित हैं। (अंक ७।३) ऐसे और भी अनेक स्थल नाटक में हैं जहाँ नाट्यकार पूर्णरूपेण कवि के रूप में कल्पना और भाव से उद्वेलित हो उठा है। प्रकृति-सौन्दर्य चित्रण के अतिरिक्त नाटककार शौर्य चित्रण में सर्वथा सफल है। प्रकृति चित्रण और शौर्य दोनों से पूर्ण यह छन्द देखिए—

आच्छाद्यैवोष्णरश्मिं निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भि-
र्हृन्मर्मोद्भेदिनादैः स्तनितपटहजैर्गर्वमाघोषयद्भिः।
धारासंपातभग्न-प्रतिभटविटपि-व्याकुलोपत्यकान्तः,
आक्रान्तो म्लेच्छसैन्यैर्जलधरनिवहैर्दुर्गराजः समन्तात्॥

—अंक ७।४

दुर्ग चारों ओर से म्लेच्छ-सेना द्वारा घिर गया है। वृक्ष रूपी हमारे सैनिक प्रतिपक्षियों की तलवार से काट डाले गये हैं, जैसे वादल अपनी घनी पंक्तियों से सूर्य को ढँक लेता है, उसी प्रकार मुगलों की सेना से हमारा सेनापति घिरा हुआ है, वादलों की भीषण गरजना के समान उनके नगाड़ों से निकलती गर्वपूर्ण ध्वनि हृदय को मर्माहत कर रही है। हमारे सैनिक उसी प्रकार व्याकुल हैं जैसे बादलों से गिरती जलधारा से वृक्षों के समूह हो जाते हैं।

नाटक के प्रथमश्लोक से ही स्पष्ट है कि इसमें वीररस अंगीभुत होकर अभिव्यक्त हुआ है अतः सर्वत्र शौर्य आदि भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। यही कारण है कि पर्वत के पूर्व में स्थित सघनवन, निर्झर, सरिताएँ दुर्ग और विशाल वृक्षों को एक वीर सैनिक के रूप में स्थान-स्थान पर वर्णित किया गया है। वर्णन पढ़ते समय वीर का शौर्ययुक्त शरीर प्रत्यक्ष दृष्टिगत होने लगता है और हृदय उसके तेज

से प्रकाशित होकर निर्भय हो जाता है। शिवराज के शस्त्र-सज्जित रूप का वर्णन पढ़कर ही हम उनके स्वरूप का दर्शन करने लगते हैं—

प्रजवतुरगकल्पितासनोऽयं, कवचधरः करवालकुन्तनद्धः।
अरुणितनयनो रूषा महोग्रः, सरभसमेत्यभितो द्विषां कृतान्तः॥

—अंक ४।१९

तीव्रगामी घोड़े पर सवार, कवच धारण किये हुए, तलवार, भाला लिए, लाल लाल आँखों और महत्तेज के कारण भयानक, शत्रुओं के लिए यमराज चले आ रहे हैं। शिवराज की सेना विजय के लिए प्रस्थान कर रही है, उसका रूप देखिए—

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुः समूर्जिता, विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वाः।
स्वातंत्र्यसम्भावनया समेधिताः प्रयान्तु मे वन्यपदातिसंघाः॥

—अंक२।११

तीक्ष्णभालों, कृपाण, धनुषों से प्रवल, कटिप्रदेश में तूणीर कसे हुए, स्वातंत्र्यभावना से भलीभाँति प्रोत्साहित वनवासियों की हमारी पैदल सेना प्रस्थान करे।

इस नाटक में दृष्टान्त उपमा, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, अनुप्रास आदि अलङ्कारों का समावेश भी सहज ही हुआ है। यहाँ एक-दो उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा—

स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं काननं शैलसंस्थं,
मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशावः।
वालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तमारात् क्षणेन,
सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्तेजसां हि प्रभावः॥

—अंक १।१२

अर्थान्तरन्यास का समावेश इसमें कितनी सहजता से हो गया है। दृष्टान्त का इसका उदाहरण—'साहाय्यमासाद्य महद्वनौकसां....कृता कबन्धता' (अंक १।१४) और अन्त्यानुप्रास का उदाहरण सुमनसु-कुमार....रमय रमेश मां रसिकेश' (अंक ७।गीत) रूपक का उदाहरण-

'पित्रोर्गुरोश्चाधि.....केसरिणः किशोरः (अंक १।४) अपह्नुति—अवेहि नैनं....वपुरेदमूर्तिमत्—(अंक २।६) और निदर्शना——लोकप्रकाशन....युगपत्सुषमां दधाति' (अंक ३।१५), आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में उचित प्रकृतिचित्रण, रसादि की पूर्ण अभिव्यक्ति, अलङ्कारों का समावेश, उचित रीति-नीति से हुआ है। वीररस की प्रधानता, स्वराज्यसंस्थापना, मंगल—प्रयोजन, पराक्रमशाली प्रतापी नायक शिवराज, इतिहासप्रसिद्ध कथावस्तु, सभी इस कृति को एक श्रेष्ठ नाटक की संज्ञा दिलाने में सर्वथा समर्थ हैं। दस-अङ्कों का यह महानाटक है। श्रीयाज्ञिकजी नाट्यरचना में पूर्णतया सफल हैं।

प्रथम बार हिन्दी-अनुवाद-सहित, इसका प्रकाशन कर 'देवभाषा-प्रकाशन' के व्यवस्थापक ने प्रशंसार्ह कार्य किया है। आधुनिक संस्कृत-नाट्य कृतियों का प्रकाशन साहसिक कार्य है।

शङ्कर जयन्ती, भाद्रपद २०२६ विक्रम शिवशङ्कर त्रिपाठी

प्रस्तुत संस्करण

आधुनिक संस्कृत लेखकों की शतशः कृतियाँ अप्रकाशित पड़ी हैं। उन्हें प्रकाश में लाना प्रत्येक संस्कृत-अध्येता का कर्तव्य है। इसी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत नाटक का हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशन संवत् २०२६ में हुआ था।

इस नवीन संस्करण में प्रायः सभी श्लोकों की स्व० श्रीश्रीधरशास्त्रीकृत संस्कृत व्याख्या दी गयी है।

प्रयागः सितम्बर ७४ अनुवादक

छत्रपतिसाम्राज्यम्

पात्र—परिचयः

प्रमुखपात्राणि—

शिवराजः	महाराष्ट्राधिपः, नाटकस्य नायकः
एसाजीः	
तानाजीः	शिवराजवयस्याः सैनिकाः
वाजीः	
दादाजीः	
आवाजीः	कल्याणप्रान्ताधिपः
श्रीरामदासः	शिवराजस्य गुरुचरणाः
कृष्णाजीः	यवनराजस्य सन्देशहरः
जगन्नाथपन्तः	
रघुनाथपन्तः	शिवराजस्य सन्देशहरः
जयसिंहः	यवनराजस्य सेनानायकः
उदयसिंहः	यवनसेनाया सैनिकः
जसवन्तसिंहः	मुगलसेनापतिः
रामसिंहः	जयसिंहपुत्रः
हीरोजीः	शिवराजवयस्यः
प्रतापरावः	शिवराजकुमारः
गागाभटः	काशीनिवासी पण्डितवरः
राजमाता	शिवराजस्य जननी
राज्ञी	शिवराजस्य राज्ञी

अन्यपात्राणि—

प्रतीहारः, कञ्चुकी, गूढचरः, द्वारपालः, दुर्गपालाश्च ।

छत्रपतिसाम्राज्यम्

प्रथमोऽङ्कः

उत्तुङ्गं सुरनिम्नगावलयितं नानामृगैः सङ्कुलं,
संक्रामन्मृगयुर्द्रुतं हिमवतः शृगान्तरं शृङ्गतः।
सानन्दं विजयाय सत्त्वविजितो दिव्यं निजास्त्रं दिशन्,
युष्मानेष पिनाकपाणिरवताल्लीलाकिरातः शिवः ॥१

उत्तुङ्गमिति—एषः, पिनाकः पिनाकाख्यं धनुः पाणौ यस्य स पिनाकपाणिः, लीलया किरातः, लीलाकिरातः, मृगान् यातीति मृगयुः शिवः, उत्तुङ्गं, उच्चं, सुरनिम्नगावलयितं, सुरापगापरिवृतं, नानामृगैः सङ्कुलं व्याप्तं, हिमवतः हिमालयस्य शृङ्गतः शिखरात् अन्यत् शृङ्गं, शृङ्गान्तरं;; द्रुतं क्षिप्रं, सत्त्वेन, बलोत्कर्षेण विजितः प्रसादित इत्यर्थः, अर्जुनाय, पार्थाय सानन्दं दिव्यं निजास्त्रं पाशुपतास्त्रं दिशन्, उपदिशन् युष्मान् रक्षतु। अत्र शिवपदेन शिवराजः, शृङ्गान्तरं शृङ्गतः इत्यनेन नानादुर्गाक्रमणं, नानामृगैः सङ्कुलं इत्यनेन नानारिपुगणावकीर्णत्वं मृगयुपदेन रिपुदलानुसरणं, विजयाय दिव्यं निजास्त्रं दिशन् इत्यनेन मंत्र्यादिभ्यो, मायोपायोपदेशः लीलाकिरातपदेन च किरातवत् सह्याद्रिकानने पर्यटनं। पिनाकपाणिपदेन, चात्र वीररसस्याङ्गित्वंसूच्यते।१

भगवान् शङ्कर जो लीलापूर्वक (स्वेच्छया) किरातवेश धारण कर, हाथ में पिनाक (धनुष) लिए, अनेक पशुओं से पूर्ण एवं कंकण के सदृश गङ्गा को लपेटे हिमालय के एक से दूसरे (उच्च) शिखर तक द्रुतगति में हरिणों का अनुसरण करते, और बलोत्कर्ष से सन्तुष्ट होकर, अर्जुन को विजय के लिए अपना पाशुपत अस्त्र देते हुए—आप सबकी रक्षा करे। (शार्दूलविक्रीडित छन्द)

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! अलमतिपरिश्रमेण । इतस्तावदागम्यताम् ।

नटी—(प्रविश्य) इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यपुत्रः ।

सूत्रधारः—अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेन छत्रपति-साम्राज्यमाख्येन नाटकेनैषा परिषत्सभाजनीया । तत्प्रस्तूयतां तावन्मल्लाररागेण स्वरतालबद्धा कापि रमणीया गीतिः परिषच्चेतो-रञ्जनाय । सम्प्रति खलु—

तपनांशुतपनशमनोऽनिलचपलश्चञ्चलोल्लसितमेघः ।
गर्जति वर्षति विकिरति वनचरनिकरान् प्रसादयति लोकान् ॥२

नटी—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (इति गायति)

तपनेति—तपनांशोः सूर्यस्य तपनं तापस्तस्य शमनः, अनिलेन वायुना चपलः,चञ्चलया विद्युतोल्लसितः प्रकाशितो मेघो गर्जति वनचराणां निकरान् समूहान् विकिरति लोकान् प्रसादयति । अत्र कारकदीपकमलङ्कारः ।

(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार–(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये ! बहुत परिश्रम न करो । आओ इधर आओ ।

नटी—(प्रवेश कर) यह आ गयी मैं । आज्ञा दें आर्यपुत्र !

सूत्रधार—आज नटपुर निवासी मूलशङ्कर लिखित 'छत्रपति-साम्राज्यम्' नामक नवीन नाटक द्वारा इस परिषद् का मनोरंजन होना चाहिए । अतः मल्लार-राग में, स्वर और तालबद्ध कोई सुन्दर गीत, सभा के मनोरंजनार्थ प्रस्तुत करो । इस समय तो—

सूर्य के ताप को शान्त करनेवाले मेघ, वायु के कारण इधर-उधरघूमते हुए चंचल विद्युल्लता से प्रकाशित होते, गर्जन के साथ जल वर्षा करके, वनचर समूह को तितर-बितर और मनुष्यों को आनन्दित कर रहे हैं । २

नटी—जो आर्यपुत्र की आज्ञा । (गाती है)

(मल्लाररागेण त्रितालेन गीयते)

रसमति रसयति रसा विशाला। विवलति चपलपयोधरमाला ॥
भवति सपदि जनतापविलयनम्। मृग्यति मृगपतिरुपरिनिलयनम् ॥ रस—
नमयति तरुगणमलमासारः। क्षुभ्यति गर्जति पारावारः ॥ रस—
नन्दति मुदितो जनपदलोकः। जलदविलोकनविगलितशोकः ॥ रस—

सूत्रधारः—(परिषदभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! एष त्वामभिनन्दति तव सङ्गीतकलाकौशलेन समाराधितो रङ्गः।

नटी—आर्यपुत्र ! यत्सत्यम्—

(मल्लारराग में त्रितालबद्ध गीत)

रसमतीति। विशाला रसा भूमिः रसं जलमति रसयति आस्वादयति। चपलाश्च ये पयोधरा मेघाश्च तेषां माला पङ्क्तिर्विवलति इतस्ततश्चलति। अत एव सपदि जनानां तापः संतापस्तस्य विलयनं निवृत्तिर्भवति। मृगपतिः सिंहः उपरि अधित्यकायां निलयनं स्थानं मृग्यति। आसारः धारासंपातः तरुगणमलं नमयति। पारावारः समुद्रः छुभ्यति गर्जति च। जनपदानां लोकः जलदस्य मेघस्य विलोकनेन विगलितो नष्टः शोको यस्य अत एव मुदितः सन् नन्दति। अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः।

विशाल धरती जल का भूरि-भूरि आस्वाद करने लगी, चञ्चल मेघों का दल इधर-उधर घूम रहा है—तुरन्त लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उस भाग में शरण ढूढने लगा। जल-बूंदों के भार से वृक्षों का समूह नत हो रहा और विशाल सागर उफनाने लगा है मेघदल को देखने के कारण अपने शोक को विस्मृत कर मनुष्य आनन्दित हो रहे हैं।

सूत्रधार—(सभी को देखकर) आर्यें ! यह सभा तुम्हारे इस संगीतकलाचातुरी से आनन्दित हो तुम्हें धन्यवाद दे रही है।

नटी—आर्यपुत्र ! यह सत्य है कि—

शिष्या यदुत्कर्षमवाप्नुवन्ति, प्रभाव एवैष गुरोरमोघः ।
जातः प्रतापोद्धतकौरवाणां; कृष्णोपदिष्टो हि जयो विजेता ॥३

सूत्रधारः—(आकर्ण्य) ! शृणु तव गीतप्रकर्षेणोज्जृम्भितस्य नवजलधरस्यैतन्मन्दगर्जितम् ।

नटी—(सस्मितम्) आर्यपुत्र ! नास्त्येतन्मेघगर्जितम् । किन्तु सम्प्रति भूभारावताराय तपनान्वये शङ्करांशेनावतीर्णः शिवराजः । स्वातन्त्र्य-भावनया समिद्धः ।

पित्रोर्गुरोश्चाधिगतार्थविद्यो, वीरानुरक्तैः सवयोभिरावृतः ।
स्वराज्यसंस्थापननिश्चितव्रतो, गर्जत्ययं केसरिणः किशोरः ॥४

(इति प्रस्तावना)

शिष्या इति । एष गुरोरेवामोघः प्रभावः यत् शिष्याः उत्कर्षमवाप्नु-वन्ति । हि यस्मात् कृष्णेन उपदिष्टः जयः अर्जुनः प्रतापेन ऐश्वर्येण उद्धता मत्ता ये कौरवाः तेषां विजेता जातः । तान् जेतुं समर्थः बभूवेत्यर्थः । अत्र अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । ३

पित्रोरिति । पित्रोः मातुः पितुश्च गुरोः दादाजी कोड़देवसकाशाच्च अधिगता अर्थविद्या राजनीतिर्येन सः वीराश्च ते अनुरक्ताश्च तैः सवयोभि-र्मित्रैः आवृतः परिवृतः, स्वराजस्य संस्थापने निश्चितं व्रतं यस्य सः अयं केसरिणः सिंहस्य किशोरः शावः गर्जति । अत्र रूपकमलङ्कारः ।४

शिष्य यदि उत्कर्ष को प्राप्त होता है तो यह गुरु का अमोघप्रभाव ही है, कृष्ण से उपदिष्ट होकर ही अर्जुन ने ऐश्वर्य के अभिमानी कौरवों पर विजय प्राप्त की थी ।३

सूत्रधार—(सुनकर) आर्ये सुनो, तुम्हारे गीतराग से आकृष्ट हुआ नव जलधर मन्द गर्जन कर रहा है ।

नटी—(मुस्करा कर) आर्यपुत्र, यह मेघ-गर्जन नहीं है बल्कि, धरती के भार को कम करने के लिए इस समय सूर्यवंश में शङ्कर के अंश से युक्त शिवराज अवतीर्ण हो गए हैं । स्वातन्त्र्यभावना से समुल्लसित पिता और गुरु के समीप में राजनीति का अध्ययन करनेवाला, जो वीरों और समवयस्क मित्रों से सनाथ है और स्वराज्य-स्थापना का दृढ़व्रती है वह केशरीकिशोर गरज रहा है । ४

प्रस्तावना समाप्त

(ततः प्रविशति वयस्यैः सह शिवराजः)

एसाजीः—अहो किंनु खलु—

प्रवर्तितं येर्भुवनैकचक्रमूर्जस्वलैर्धर्मनयोपबृंहितैः ।
ते भारतीया यवनेशमर्दिता, नष्टप्रभा यान्त्यभिधानशेषताम् ॥५

तानाजीः—वयस्य ! स्वोदरपूरणार्थं यवनेशमुपाश्रिता वयमेव तत्र कारणम् ।

बाजीः—अस्थान एव तवायमुपालम्भः । यतो मिथोविद्वेषभिन्नानामस्माकं यवनेशाश्रयं विना काऽन्या गतिः संभाव्यते । संप्रति तु तैरेव सुनियंत्रिता वयं सुखेन कालं यापयामः ।

एसाजीः—उदारचरितानस्मन्नृपतिगणान् कूटप्रबन्धैरुन्मूलयद्भिस्तैः किं न्यायमाचरितम् ?

प्रवर्तितमिति । यैः ऊर्जस्वलैः ऊर्जो बलमेषामस्तीति तैः धर्मो नयश्च आभ्यामुपबृंहितैः समृद्धैः भुवनैकचक्रं भुवनसाम्राज्यं प्रवर्तितं ते प्रसिद्धाः भारते जाताः भारतीयाः यवनेशैः मर्दिताः पीडिताः नष्टा प्रभा तेजः येषां तादृशाः सन्तः अभिधानं शेषं येषां तेषां भावः तां यान्ति । उपजाति-वृत्तम् ।५

(मित्रों सहित शिवराज का प्रवेश)

एसाजी—ओह, ऐसा क्यों है—

भारतीय, जो धर्म और नीति-ज्ञान से समृद्ध होकर सारे संसार के साम्राज्य प्रवर्त्तक रहे, आज वही भारतीय जन यवनों से पीडित हो, अपने तेज को नष्ट कर नाम मात्र को शेष रह गए ।५

तानाजी—अपने उदर की पूर्ति (स्वार्थ-साधन) हेतु यवनों के उपासक (आश्रित) हम स्वयं इसके कारण हैं ।

बाजी—यह आपका उलाहना उचित नहीं है । क्योंकि जब पारस्परिक विद्वेष-भावना से हम आपस में ही कलह करते हैं तो यवनों की शरण के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही कौन है, इस समय तो हम उन्हीं के नियंत्रण में सुख से समय बिता रहे हैं ।

एसाजी—क्या अपनी कूटनीति द्वारा उन्होंने हमारे उदारचरित सम्राटों का मूलोच्छेदन कर उचित किया ?

बाजी:—न सन्त्यत्रैकान्तेन दोषभाजो यवनेश्वराः। यतः—

परस्परोन्मूलन—संप्रवृत्तान्,
विहाय धर्मं विषयेषु सक्तान्।
नित्यं प्रजास्वापहरान्नृपालान्,
निगृह्य तैर्गंह्य मनुष्ठितं किम् ॥६

एसाजी:—अरे ! किमेवं भ्रान्तोऽसि । धर्मच्युतान्निगृह्य किं धर्मराज्यं स्थापितं यवनेश्वरैः । एतेषामपचारपरंपरा स्मरणेन जायते मे रोमहर्षः । संमानमिषेण राजसभामुपास्थापितस्य सात्मजस्य जाधवरावस्याकाण्डवधेन प्रज्ज्वलितः क्रोधानलोऽद्यापि सर्वत्र गूढं प्रज्ज्वलति ।

बाजी:—स्वकृतघ्नताया एव फलमुपभुक्तं जाधवरावेण । यवनेश्वरस्तु तत्र निमित्तमात्रम् ।

बाजी—इस सन्दर्भ में यवनशासक ही केवल दोषी नहीं हैं क्योंकि—

पारस्परिक द्वेष के कारण एक दूसरे का विनाश करने में रत, धर्मानुसरण का मार्ग त्याग भोग-विलास में अनुरक्त, अपने कर्त्तव्य से विरत, नित्य प्रजा के धन का दुरुपयोग करनेवाले नरेशों का नाश करके उन्होंने अनुचित क्या किया ।६

एसाजी—यह आप कैसे भ्रम में पड़ रहे हैं ? क्या इन यवनों ने हमारे धर्मच्युत राजाओं का अन्त करके धर्मराज्य स्थापित किया है ? इनके अत्याचार-परम्परा के स्मरण मात्र से मुझे रोमांच हो आता है। सम्मान देने के व्याज से सभा में उपस्थित किये गये पुत्र-सहित जाधवराव के अचानक वध से प्रज्ज्वलित क्रोधानल आज भी सर्वत्र भली-भाँति जल रहा है ।

बाजी—अपनी कृतघ्नता का ही फल जाधवराव को मिला । यवनराज तो उसमें निमित्त मात्र रहे ।

शिवराजः—वयस्याः ! अलं वचनप्रतिवचनैः । परमार्थतस्तु न केवल-मेकान्तेन दोषभाजो दुर्वृत्ता यवनेश्वराः किन्तु तत्सधर्माण इदानींतना राष्ट्रद्रुहः क्षत्रेश्वरा अपि । यतः—

दुर्वृत्ते नृपतौ तु मंत्रिसचिवास्त्यक्त्वा नियोगं निजं,
स्वच्छन्दं विहरन्ति कामवशगा उद्वेजयन्तः प्रजाः ।
राष्ट्रोपप्लवशङ्कयाऽन्यनृपतिं सद्यः श्रयन्ते जनाः,
कालेनापचयेन कोशबलयो राष्ट्रं ततो नश्यति ॥७

तद्वयस्याः !

उद्धर्तुमेनां परिपीडितां भुवं,
धर्मच्युतैरुन्मदराज — संघैः ।
साम्राज्य — संस्थापनमन्तरेण,
न वर्ततेऽन्याऽर्थकरी प्रतिक्रिया ॥८

अपि चाततायिभ्यः स्वप्रजानिर्विशेषं प्रजानां परिपालनमेव सर्वत्र राज्ञां परमो धर्मः । अतो धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतस्य मम—

शिवराज—मित्रो, वाद-विवाद समाप्त करो । सत्य तो यह है—केवल यवन-शासक ही दोषी नहीं हैं अपितु राष्ट्रद्रोही क्षत्रियनरेश भी उन्हीं के समानधर्मा हैं । क्योंकि—

राजा के दुर्वृत्त हो जाने पर मन्त्री, सचिव सभी अपना कर्त्तव्य भुला देते हैं—स्वतन्त्र हो जाते हैं और विलास-साधन में रत प्रजा को पीड़ित करने लगते हैं । प्रजा विप्लव के भय से अन्य राजा का आश्रय लेती है और इस प्रकार धीरे-धीरे कोश, बल, राष्ट्र नष्ट हो जाता है ।७

इसलिए मित्रों—

इस भूमि को धर्मच्युत, उन्मद शासकों के अत्याचार से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र साम्राज्य-स्थापना के अतिरिक्त अन्य कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है ।८

और सर्वत्र अत्याचारियों से प्रजा का अपनी औरस सन्तान की भाँति पालन और रक्षा करना राजा का परम धर्म है । अतः स्वराज्य संस्थापन के लिए उद्यत मेरे द्वारा—

दुर्वृत्तभृत्याहित — राज्यभाराः,
प्रजाद्रुहश्चार्थपराः कुशीलाः ।
क्षत्रेश्वरा वा यवनेश्वरा वा,
सद्यो भविष्यन्ति कृपाणगोचरा ॥९

बाजीः— कुमार ! अपायसमाकुलो हि बलवतां विरोधः । यतः—

विना विवेकं प्रतिपद्य साहसं,
परापकर्षं किल यश्चिकीर्षति ।
विपद्विभिन्नः स जनोऽल्पसाधनः,
क्षुब्धार्णवे नौरिव सीदति स्वयम् ॥१०

शिवराजः—वयस्य ! साहस एव श्रीः प्रतिष्ठिता । यतः—

रिपुप्रकर्षेऽप्यनपागतद्युति-
र्जितेन्द्रियः साहसविक्रमोर्जितः ।
दिवानिशं यः सततं प्रयत्नवां-
स्तमेव सद्यो वृणुते नृपश्रीः ॥११

पुराऽपि साहसेनैव स्वायत्तीकृतं स्वपितृपैतामहं राज्यं पाण्डुनन्दनैः ।

वे समस्त (राजा, क्षत्रिय अथवा यवन) प्रजा का द्रोह करनेवाले दुर्वृत्त में रत, स्वार्थसाधन में तत्पर, अनीतिगामी हैं, शीघ्र मेरे कृपाण के ग्रास बन जायेंगे ।९

बाजी—कुमार ! बलवान से विरोध लेना हानिप्रद होता है । क्योंकि विवेकहीन यदि कोई साहस के सहारे शत्रु को अल्प साधनों से पराजित करना चाहता है, वह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे महासमुद्र में उफान आने पर नौका नष्ट हो जाती है ।१०

शिवराज—मित्र, साहस से श्री की प्रतिष्ठा है (श्री की प्राप्ति होती है) क्योंकि—

राजलक्ष्मी उसी का वरण करती है जो शत्रु के अभ्युदय में भी धैर्य और साहस नहीं छोड़ता, जो जितेन्द्रिय, सतत् प्रयत्नशील तथा जो बल-विक्रम का स्थान है ।११

प्राचीन समय में भी पाण्डवों ने अपने पूर्वजों के राज्य पर साहस से ही अधिकार किया था ।

एसाजीः—अये ! तेजस्विनां तु साधननिरपेक्षैव साध्यसिद्धिः । यतः—

स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं काननं शैलसंस्थं,
मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशावः ।
बालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तमारात् क्षणेन,
सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्तेजसां हि प्रभावः ॥१२

तानाजीः—कुमार ! तेजस्विनामपि साहाय्यमन्तरेण तु संशयितैव कार्यसिद्धिः । परन्तु—

यथा समन्ताद् सरितः प्रवाहं, स्रोतांसि सर्वाणि समाविशन्ति ।
तेजस्विनं लोकहितैकतत्परं, तथा स्वयं वीरगणाः श्रयन्ते ॥१३

स्वल्प इति । स्वल्पोऽप्यग्निः शैलसंस्थं गिरिगतं काननं वनं किं न ज्वलयति अ पितु ज्वलयत्येव । मत्ताश्च ते इभेन्द्राः मत्तङ्गजाः तान् सिंहशावः किं लीलया न विदलति विदारयति अपि तु विदलत्येव । बालः अपि अर्कः सूर्यः क्षणेन ध्वान्तमन्धकारं किं आरात् दूरं न विकिरति अपि तु विकिरत्येव । तेजसा तेजस्विनां हि प्रभावः सर्वत्र एव अप्रतिहतः अबाधितः रयः वेगः यस्य तादृश अस्ति । अत्र अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।१२

एसाजी—तेजस्वियों को तो साधन न होने पर भी कार्यसिद्धि हो जाती है, क्योंकि—

तेजस्वियों का प्रभाव सर्वत्र ही अप्रतिम होता है—क्या अग्नि का एक कण भी पर्वतस्थित जंगल को भस्म नहीं कर डालता ? १२

तानाजी—कुमार ! तेजस्वियों के लिए भी साहाय्य के अभाव में कार्यसिद्धि संशयात्मक ही होती है । परन्तु—जैसे नदी के प्रवाह में चारों ओर से स्रोत आकर प्रवेश करते हैं उसी प्रकार लोकहित में तत्पर तेजस्वी व्यक्ति का अनुसरण वीरगण स्वयं किया करते हैं । १३

शिवराजः—नास्त्यत्र विसंवादः । लोकहिततत्परस्य तु सन्ति निसर्गसिद्धाः सहायाः । तद्भवद्भिः प्रकल्पितैरुपायविशेषैरहम्—

साहाय्यमासाद्य महद्वनौकसां,
ध्रुवं विजेष्ये यवनेशमुन्मदम् ।
रघूद्वहाभ्यां कपिसेनया न किं,
दशाननस्याऽपि कृता कबन्धता ॥१४

अनुचरः—(प्रविश्य) विजयतां कुमारः । स्वभगिनीमावुत्तस्य ग्रामं प्रापयन्तं नेताजीं मार्गे समाक्रम्य सबान्धवं च तं निहत्यापहृता तस्य भगिनी बीजापुरसैनिकैः । (इति निष्क्रान्तः)

साहाय्यमिति—वने ओकः निवासः येषां तेषां वनौकसां मावलेजनानां, महत् साहाय्यमासाद्य प्राप्य, उन्मदमुन्मत्तं यवनेशं बीजापुरेशं ध्रुवं निश्चयेन विजेष्ये । रघूद्वहाम्यां रामलक्ष्मणाभ्यां कपिसेनया दशाननस्य रावणस्य, अपि कबन्धता किं न कृता अपितु कृतैव । यदि रामलक्ष्मणाभ्यां कपिसेनया दशाननो निहतः तदा वयं सर्वे मिलित्वा मानवसेनया एकाननं बीजापुरेशं ध्रुवं विजेष्यामहे इति किमु वक्तव्यं । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् । १४

शिवराज—इसमें कोई संशय नहीं है । लोकहितैषी व्यक्ति को स्वयं ही सहायक और सहायता की प्राप्ति हो जाती है । अतः मैं आप लोगों द्वारा निर्दिष्ट उपाय से ही—

वनवासी मावलों की सहायता द्वारा निश्चित रूप से बीजापुरनरेश पर विजय करूँगा, क्या रामलक्ष्मण ने कपि-सेना की सहायता से दशानन रावण को शिरविहीन नहीं कर दिया था । १४

अनुचर—(प्रवेशकर) कुमार ! जय हो । अपनी भगिनी को अपने बहनोई के गाँव ले जाते समय, बान्धवों समेत नेताजी पर आक्रमण करके बीजापुर के सैनिकों ने मार डाला और उनकी भगिनी का अपहरण कर लिया । (चला जाता है ।)

शिवराजः—(सरोषम्) अरे ! कथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुलप्रसूतैरस्माभिर्मर्षणीयम् । वयस्याः—

आर्तानां परिपालनाय सहसा शस्त्रं न येनोद्धृतं,
विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम् ।
राज्ञामुत्पथगामिनां प्रमथने युद्धं न चैवादृतं,
क्षात्रं जन्म धिगस्य राघवयशःप्रज्ज्वालिते भारते ॥१५

तदद्य धर्मराज्यसंस्थापनेन संपादनीयमस्मज्जीवितसाफल्यम् ।

एसाजीः—अभिनन्द्यते कुमारभाषितम् । (दूरं विलोक्य) एष दादोजी देशमुख इत एवाभिवर्तते ।

दादोजीः—(प्रविश्य) अप्यनामयं कुमारस्य ।

आर्तानामिति—येन आर्तानां पीडितानां परिपालनाय रक्षणाय शस्त्रं न उद्धृतं, येन च वेदविदुषां वेदविदां व्रतिनां ब्रह्मचर्यादिव्रतनिष्ठानां विप्राणामाराधने न स्थितं, उत्पथगामिनामुन्मार्गप्रवृत्तानां राज्ञां प्रमथने विनाशे युद्धं न आदृतमस्य क्षात्रं जन्म रामस्य यशसा प्रज्वालिते प्रकाशिते भारते धिक् निन्द्यमेवेत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । १५

शिवराज—(रोष-सहित) ओह ! क्षत्रियकुलोद्भूत हम लोग इस अपराध को कैसे क्षमा कर सकते हैं । मित्रो—

पराक्रमी राम के यश से धवलित इस भारत-भूमि में जन्म लेनेवाले उस क्षत्रिय का जन्म ही व्यर्थ है, वह सर्वथा निन्द्य है—जिसने आर्तों की पुकार सुनकर उनके रक्षणार्थ तुरन्त शस्त्र नहीं उठाया जो वेदज्ञ व्रती ब्राह्मणों की आराधना में प्रवृत्त नहीं हुआ और जिसने अनीतिपालक अनाचारी राजा के विनाशार्थ युद्ध का उपक्रम नहीं किया । १५

अतः हम लोग धर्मराज्य की स्थापना करके अपने जीवन को सफल बनायें ।

एसाजी—हमें स्वीकार है. कुमार ! आपके कथन का हम अभिनन्दन करते हैं । (दूर देखकर) दादोजी देशमुख यहीं आ रहें हैं ।

दादोजी—(प्रवेश करके) कुमार कुशल हैं न ?

शिवराजः—स्वागतं देशमुखप्रवरस्य । समन्तात् प्रवृत्ते लोक- विप्लवे कुतोऽनामयं क्षत्रियाणाम् ।

दादोजी:—तथ्यमेवाभिहितं कुमारेण । यतो लोकसंग्रहार्थमेव ध्रियन्ते क्षत्रियस्य प्राणाः । कुमार ! त्वदधीन एवास्त्यस्य महतः कार्यस्योपक्रमः । तद्भविष्याम्यहमत्र यावज्जीवं तव सहायः ।

शिवराजः—अनुगृहीतोऽहं भवतां सौजन्येन । वयस्याः ! प्रथमं तावदस्माभिर्बीजापुरेशहस्तगताः सह्याद्रिदुर्गाः कथमपि स्वायत्तीकर्तव्याः ।

बाजीः—प्रचुरकोषबलाढ्योऽयं वर्तते बीजापुरेश्वरः । तत्—

शक्तित्रयोत्कर्ष—समेधितानां, सामाद्युपायैःपरिरक्षितानाम् ।
षाड्गुण्ययोगोन्मथितद्विषां किं विद्वेषतः श्रेय उपाश्रयेम ॥१६

शक्तित्रयेति । शक्तित्रयस्य प्रभुमंत्रोत्साहशक्तीनामुत्कर्षेण समेधितानां समृद्धानां सामाद्युपायैः सामदानभेददण्डैः परिरक्षितानां षाड्गुण्यं 'सन्धिर्ना-विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः, तस्य योगेन उन्मथिताः द्विषः यैः तेषां विद्वेषतः कि श्रेयः उपाश्रयेम न किमपीत्यर्थः । इन्द्रवज्रावृत्तम् १६

शिवराज – देशमुख कुल-शिरोमणि का हम स्वागत करते हैं । सर्वत्र जब लोकविप्लव उपस्थित हो तो क्षत्रिय को विश्राम कहाँ ?

दादोजी—कुमार ! सत्य कह रहे हैं । क्योंकि लोकसंग्रहार्थं ही क्षत्रियों ने प्राण धारण किया है । इस महान् कार्य का उपक्रम आपके ही अधीन है कुमार ! अतः हम जीवन-पर्यन्त आपके इस कार्य में सहायक रहेंगे—

शिवराज—आपके सौजन्य के लिए हम आभारी हैं । मित्रों सर्व प्रथम बीजापुर नरेश द्वारा हस्तगत सह्याद्रि-दुर्गों को अपने अधिकार में करना चाहिए ।

बाजी—बीजापुरनरेश प्रचुरकोश संपन्न एवं शक्तिशाली है । अतः– तीनों शक्तियों के उत्कर्ष से समृद्ध, साम, दाम, दण्ड भेद, चारों उपायों से रक्षित और राजनीति के छः गुणों के सहारे अपने शत्रु को पराजित करनेवाले शक्तिशाली से शत्रुता करके हमें क्या लाभ होगा ? १६

एसाजीः—बलवन्तमप्यभिभवायोज्जृम्भते परा संघशक्तिः। यतः—

प्रभावमुख्या न हि शक्तयस्तथा संपादयन्तीप्सितकार्यसिद्धिम्।
यथा रिपौ कोशबलप्रमत्ते, नयप्रयुक्ता परसंघशक्तिः ॥१७

तानाजीः—उदात्तचरितानामेव परिपन्थिनामभियोग उपयुक्ता एताः शक्तयो न त्वधमानाम्। अपि च—

मन्त्रगुप्तिविरहाद्गणसंघौ, युक्तितस्तु भवतः सुखभेद्यौ।
माययाऽधमपरप्रतिघातः श्रेयसे नयविदां नृपतीनाम् ॥१८

प्रभावेति—प्रभावः मुख्यः प्रधानः यासु ताः प्रभुमंत्रोत्साहशक्तयः कोशबलाभ्यां प्रमत्ते रिपौ तथा ईप्सितकार्यसिद्धि न संपादयन्ति यथा नयेन अर्थशास्त्रविहितरीत्या प्रयुक्ता परा उत्कृष्टा चासौ संघशक्तिश्च कार्यं संपादयतीत्यर्थः। उपजातिवृत्तम्। १७

मंत्रेति—गणः क्षत्रियाणां वणिजां वा, संघः जानपदानां तौ मंत्रस्य गुप्तेः रक्षणस्य विरहात् मंत्रभेदादित्यर्थः युक्तितः सामाद्युपायैः सुखभेद्यौ भवतः। अतः मायया, छलप्रयोगैः अधमः यः परः तस्य प्रतिघातः नयविदां नृपतीनां श्रेयसे भवतीत्यर्थः। स्वागतावृत्तम्। १८

एसाजी—सब शक्तियों से उत्कृष्ट संघशक्ति शक्तिशाली को भी पराजित होने के लिए विवश कर सकती है—

क्योंकि, कोशबल से प्रमत्त शत्रु के लिए तीन शक्तियाँ (मंत्रोत्साहादि) उतनी प्रभावक नहीं हैं जितनी कि नीति-विहित गठित संघशक्ति। १७

तानाजी—ये शक्तियाँ तो उदारचरित शत्रु से संघर्ष करने के लिए उपयुक्त हैं न कि अधम शत्रु के लिए।

और भी—मंत्रभेदादि की सहायता से केवल क्षत्रिय, वणिक् आदि के गण तथा जनपदों के संघ को विच्छिन्न करना सहज है परन्तु अधम शत्रु से मुकाबला करने के लिए नीतिज्ञ नृपति द्वारा छल, माया का सहारा लेना परम श्रेयस्कर है। १८

तत्पञ्चमोपायमात्रसाध्या भविष्यन्त्यधमारातयः ।

शिवराजः—ममाप्येतदेवास्त्यभिमतम् । यतः—

परे तु तेजस्विनि धर्म्यवृत्तौ,
सामाद्युपायाः सफला भवन्ति ।
न विद्यते दुर्नयशालिनां जये,
मायाप्रयोगादपराप्रतिक्रिया ॥१९

अपि च—

धर्मतः प्रतिविधानमात्मनो,
विप्लवाय वृजिनावृते रिपौ ।
विष्णुनाऽपि बलिनः सुरद्विषः,
घातिताः प्रतियुगं स्वमायया ॥२०

धर्मत इति—वृजिनावृते पापात्मनि रिपौ धर्मतः प्रतिविधानं आत्मनः स्वस्य विप्लवाय विनाशाय भवति । लोकसंग्रहार्थं मायाप्रयोगो न दोषायेत्याह विष्णुनेति । अलोकसाधारणविक्रमशालिना विष्णुना अपि बलिनः सुरद्विषः दानवाः प्रतियुगं स्वमायया घातिताः । रथोद्धतावृत्तम् । २०

अतः अधम शत्रु का विनाश पंचमोपाय-माया आदि से ही साध्य होगा ।

शिवराज—मेरा भी अभिमत यही है । क्योंकि—

धर्मवृत्तिवाले तेजस्वी शत्रु के समक्ष ही सामदामादि उपाय सफल होते हैं और दुर्नीतिगामी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए माया-प्रयोग के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है । १९

और भी—

पापवृत्ति-शत्रु के विरुद्ध धर्मनीति का व्यवहार स्वविनाश का कारण होता है—भगवान् विष्णु ने भी बलशाली असुरों के विनाश के लिए अपनी माया का प्रयोग हमेशा किया था । २०

सर्वे—सर्वथा अभिनन्द्यते कुमारवचनम् ।

शिवराजः—तदेव भवन्मित्रपदमारूढोऽहमद्य प्रतिजाने यत्—

मानं धनं राजविलासभोगान्,
मित्राणि दारानपि जीवितं च ।
हुत्वा रिपुज्ज्वालितहव्यवाहने
संस्थापयिष्ये मम धर्मराज्यम् ॥२१

सर्वे—कुमार ! एतद्भीष्मप्रतिज्ञासिद्धये बद्धपरिकरानस्मान्

दुर्भेद्यदुर्गाक्रमणे प्रयाणे,
रणाङ्गणे दुष्करसाहसे वा ।
अवेहि राजंस्तव पार्श्ववर्तिनः,
स्वजीवितेऽस्मिन्निरपेक्षतां गतान् ॥२२

शिवराजः—वयस्याः ! भविष्यन्ति भवन्त एवाधिकारपदभागिनो मम धर्मराज्ये । यतः—

सभी—कुमार का कथन सर्वथा अभिनन्दनीय है ।

शिवराज—अतः आपका मित्र मैं घोषणा करता हूं कि शत्रु के द्वारा प्रज्वलित रणरूपी अग्नि-अज्ञ में मैं अपने मान, सम्मान, धन, भोग-विलास, मित्रों, पत्नी ओर प्राणों तक की आहुति देकर अपने धर्मराज्य की स्थापना करूंगा ।। २१

सभी—कुमार, आपकी इस भीष्मप्रतिज्ञा की सिद्धि-हेतु हम कटिबद्ध होकर—

दुर्भेद्य दुर्गों के ऊपर आक्रमण करते समय, रणांगण में प्रस्थान-समय अथवा अन्य दुष्कर एवं साहसी कार्यों में, राजन् ! अपने प्राणों तक की चिन्ता बिना किये पार्श्ववर्ती रहेंगे, ऐसा समझें ।। २२

शिवराज—मित्रो, मेरे धर्मराज्य में आप सब अधिकार-पद के भागी होंगे । क्योंकि—

समानविद्यानयविक्रमेषु, राष्ट्रैकभक्तिप्रथितान्वयेषु ।
जितेन्द्रियेष्वेव निजाधिकारं, विभज्य साम्राज्यमुपैति भूमिपः ॥२३

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण दादाजीकोंडदेवः)

शिवराजः—(सप्रश्रयम्) स्वागतं भगवतः ।

दादाजीः—वत्स ! विरमास्मात्साहसाध्यवसायात् । एवं कुलक्रमागतवृत्तिपरित्यागात्तु तवानर्थापत्तिरेवेति तर्कये ।

शिवराजः—भगवन् ! यवनेशविद्वेषप्रभवादनर्थशतादपि श्रेय एवेति मे बलवान् प्रत्ययः । यतः—

धर्मध्वंसधृतव्रतान् परधने लुब्धान् मृदौ निर्दयान्,
मन्दान् विक्रमशालिनि प्रतिभटे कूटप्रयोगोत्कटान् ।
विश्वस्तेऽपि च हिंस्रकान् कुलवधूसंकर्षणे सोत्सवान्,
गोविप्रेष्वपचारिणः कथमिमान् देवद्विषः संश्रये ॥२४

धर्मेति—धर्मस्य ध्वंसः विनाशः तदर्थं धृतं व्रतं यैः तान् परधने लुब्धान् मृदौ निर्दयान् क्रूरान् विक्रमशालिनि मन्दान् नम्रान् प्रतिभटे कूटप्रयोगैः छलप्रयोगैः उत्कटान् उग्रान् स्वस्मिन् विश्वस्ते अपि हिंस्रकान् वधोद्यतान् कुलवधूनां संकर्षणे अपहरणे सोत्सवान् गोविप्रेषु अपचारिणः देवद्विषः इमान् यवनेश्वरान् कथमहं संश्रये । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । २४

विद्या, नीति, पराक्रम, राष्ट्रभक्ति, प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न जितेन्द्रियों में अपने अधिकार का समान विभाजन करनेवाला राजा ही साम्राज्य सत्ता को सुदृढ़ कर सकता है । २३

शिवराज—(नम्रता से) आपका स्वागत है ।

दादाजी—वत्स, इस दुस्साहसपूर्ण प्रतिज्ञा को छोड़ दो । इस प्रकार कुलक्रमागत वृत्ति के परित्याग से आपके ही अनर्थ की सम्भावना हो सकती है ।

शिवराज—भगवन् शतशः अनर्थों को उत्पन्न करनेवाली भी यवनेश की यह शत्रुता हमारे लिए श्रेयस्कर है । क्योंकि—

ये धर्म विनाश का व्रत धारण किये हुए, परधन के लोभी, निर्बलों के लिए क्रूर, विक्रमशाली के सामने नम्र किन्तु प्रतिपक्षी सैनिकों के साथ छल करनेवाले, विश्वासी लोगों के साथ भी हिंसा-वृत्ति अपनानेवाले कुलवधुओं का अपहरण और गौ-ब्राह्मणों पर अत्याचार करनेवाले तथा देवताओं के विद्वेषी हैं । २४

दादाजीः—वत्स ! शिवराज ! सम्यगवधारितयवनेशस्वभावमद्य त्वामवरोद्धुं नोत्सहे । तच्छृणु मे परमं नयवचनं यदाश्रयणेन निष्प्रत्यूहा भविष्यन्ति तवाभितार्थसिद्धयः । त्वं तावत्—

अन्योऽन्येर्ष्याकलुषितधियः संप्रयुञ्जन्नृपालान्,
प्रीत्युद्रेकाद्वनचरपतीन् प्रीणयन् सिद्धलक्ष्यान् ।
दानैर्मानैर्मधुरवचनैः रञ्जयन् लोकवीरान्,
लीलायुद्धैर्जय जनपदान् दुर्जयांश्चाद्रिदुर्गान् ॥२५

अन्योऽन्येति—अन्योऽन्येर्षया कलुषिता धीः येषां तान् नरेशान् संप्रयुञ्जन् संगमयन्, प्रीतेः उद्रेकः उत्कर्षः तस्मात् हेतोः सिद्धं लक्ष्यं येषां तान् वनचरपतीन् प्रीणयन् दानैः मानैः मधुरवचनैः लोकाः प्रजाजनाः वीराः विक्रमशालिनश्च तान् रञ्जयन् लीलया युद्धानि लीलायुद्धानि तैः जनपदान् देशान् दुर्जयान् च अद्रिदुर्गान् जय । मन्दाक्रान्तावृत्तम् । अत्रोपदिष्टं नाम नाट्यलक्षणम् । २५

दादाजी—वत्स ! शिवराज ! यवनेश के स्वभाव को भलीभाँति जान लेने के पश्चात् अब तुम्हें रोकने का साहस मुझ में नहीं है । अतः सुनो मैं जो नीतियुक्त वचन कहता हूं, उसके सहारे सरलता से अभीष्ट सिद्ध होगा । तुम—

पारस्परिक द्वेष से कलुषित हृदय राजाओं को एकता के सूत्र में बाँधो, अपने स्नेहप्रदर्शन से वनचरपतियों को (जो लक्ष्य साधन में सिद्ध हैं) प्रसन्न कर अपने साथ लो । प्रजाजन, वीरों को मान, सम्मान, दान और मधुरवाणी द्वारा सन्तुष्ट करके, कौतूहल की भाँति युद्ध द्वारा जनपदों और दुर्जेय दुर्गों पर विजय प्राप्त करो । २५

कुमार ! सर्वत्र मंत्रगुप्त्यधीन एव विजयः। तन्मन्त्रसंवरणे सदैव त्वया सावधानेन भवितव्यम्। यतः—

मंत्रो विहङ्गैः पशुभिश्च गृह्यते, तलैश्च कुड्यैःपटलैर्निशम्यते।
समीरणेनाऽपि सुदूरमुह्यते, क्वचिन्निजैराप्तजनैस्तु भिद्यते ॥२६

एवं च सुगुप्तमंत्रस्त्वम्—

साम्ना क्षत्रपुलिन्दवृन्दनृपतीनापादय स्वानुगान्,
निःशङ्कं नयसंश्रितो बलवतो दृप्तान् रिपून्धर्षय।
धूर्तारातिविकल्पिते प्रतिविधौ मा स्म प्रमत्तो भव,
स्वातन्त्र्यं समुपास्स्व मंत्रपरमः साम्राज्यमास्थापय ॥२७

साम्नेति—क्षत्राः क्षत्रियाः पुलिन्दाः वनेचराः तेषां वृन्दानि समूहान् नृपतीन् च स्वानुगान् स्वानुकूलान् आपादय कुरु। ततश्च नयसंश्रितो बलवतः दृप्तान् गर्वितान् रिपून् निःशङ्कं धर्षय आक्रमस्व। धूर्ताश्च ते अरातयः शत्रवश्च तैः विकल्पिते प्रतिविधाने मा स्म प्रमत्तो भव प्रमादं मा कुरु इत्यर्थः। स्वातंत्र्यं समुपास्स्व सर्वात्मना अवलम्बस्व इत्यर्थः। मंत्रः मंत्रिभिः संमन्त्र्य निर्णीतः अर्थः स एव परमः प्रधानः यस्य तादृशः सन् साम्राज्यमास्थापय। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। २७

कुमार ! विजय मन्त्रणा की गोपनीयता पर निर्भर करती है अतः तुम मंत्रणा की गोपनीयता की ओर अवश्य सावधान रहना क्योंकि—

मंत्रणा, पशु-पक्षियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, फर्श, दीवार और छत इसे सुन सकती हैं, इसे वायु दूर तक ले जा सकती है एवं कभी-कभी अपने ही विश्वस्त जन द्वारा इसका भेद खुल सकता है। २६

इस प्रकार गुप्त मंत्रणा द्वारा—

साम द्वारा क्षत्रियों तथा वनेचरों के नरेशों को अपने पक्ष में करके, नीति के सहारे निश्शंक होकर बल से उन्मत शत्रु पर आक्रमण करो। धूर्त शत्रु के साथ प्रतिविधान करने में भी प्रमाद मत करो, एवं अपने मंत्रियों द्वारा निश्चित नीति के मार्ग पर चल कर स्वतन्त्रता की उपासना और साम्राज्य की स्थापना करो। २७

शिवराजः—भगवन्नैष उपदेशः किन्तु साक्षाद्वर एव। अतो भगवदनुग्रहेणाचिरेण संपादयिष्ये साम्राज्यसिद्धिम्।

दादाजीः—वत्स ! सफलाः सन्तु ते नयोपक्रमाः। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—दिष्ट्या गुरुचरणा अप्यत्रानुकूलाः संवृत्ताः।

तानाजीः—[दूरं विलोक्य] कुमार ! समुपागतोऽयं जराजर्जरिताङ्गस्तोरणादुर्गपालः।

तोरणादुर्गपालः—[प्रविश्य] [शिवराजमुपसृत्य] कुमार ! धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतं त्वां निशम्य तीर्थयात्राप्रवणेन मया त्वदायत्तः क्रियते मन तोरणादुर्गः। त्वं तावत् तत्र स्थित्वा प्रवर्त्तय तव शासनम्।

शिवराजः—यदत्र भवते रोचते। श्व एवाहं तत्र प्रस्थास्ये।

तोरणादुर्गपालः—वत्स ! चिरंजीव। पूरयतु तव मनोरथं भगवती वरदेवता। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—दिष्ट्या हस्तगतोऽस्माकं तोरणादुर्गः। एवम्-

शिवराज—भगवन् ! यह उपदेश नहीं साक्षात् वरदान है। अतः आपके अनुग्रह से मैं शीघ्र साम्राज्य-स्थापना की सिद्धि प्राप्त कर लूंगा।

दादाजी—वत्स ! तुम्हारी नीति सफलीभूत हो। (चले जाते हैं)

शिवराज—भाग्य से गुरुदेव भी अनुकूल हो गये।

तानाजी—(दूर देखकर) कुमार ! वृद्धावस्था के कारण जर्जर शरीर वह तोरणादुर्ग का पालक आ रहा है।

तोरणादुर्गपाल—(प्रवेश कर और शिवराज के पास पहुंचकर) कुमार, यह सुनकर, आप धर्मराज-स्थापना हेतु तैयार हैं, मैं तोरणादुर्ग आपके अधिकार में सौंप रहा हूं क्योकि मैं तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्तुत हूं। आप तब तक वहाँ रहकर अपना शासन प्रारम्भ करें।

शिवराज—जैसी आपकी इच्छा। कल मैं वहाँ के लिए प्रस्थान करूंगा।

तोरणादुर्गपाल—चिरंजीव वत्स ! भगवती तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करें (जाता है।)

शिवराज—भाग्य से तोरणादुर्ग हमारे अधिकार में आ गया। इस प्रकार—

अनायासेन कार्यस्य यस्य सिद्ध्यत्युपक्रमः ।
आसमाप्तेर्ध्रुवं तस्य व्याघातो नैव कुत्रचित् ॥२८

तानाजीः—भवान्यनुग्रहशालिनस्ते नास्ति किमप्यसाध्यं नाम ।

एसाजीः—कुमार ! तोरणाछद्मना तु साम्राज्यश्रीमन्दिरस्य तोरणमेव त्वया समासादितम् । अतः परं ते भद्रमेव पश्यामि ।

शिवराजः—वयस्याः ! भवतां साहाय्येन संनिहितैव मम साम्राज्य-सिद्धिः । तद्युष्माभिर्महार्होपायनैर्वशीकृत्य चाकणकोण्डनेदुर्गपालौ तदधिष्ठितौ दुर्गौ संपादनीयौ । अहमपि नयेन पुरन्दरदुर्गमात्मसात्कृत्वा दुर्वृत्तं सुपेप्रान्ताधिपं मातुलं निगृह्णामि ।

सर्वे—यदाज्ञापयति कुमारः ।

शिवराजः—साधयामस्तावत्स्वनियोगमनुष्ठातुम् । (इति निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं साम्राज्योपक्रमनामा—प्रथमोऽङ्कः ।

●

कार्य के प्रारम्भ में यदि विना किसी कठिनाई के सिद्धि प्राप्त होती है तो निश्चित ही यह पूर्ण होगा, कोई भी विघ्न नहीं हो सकता । २८

तानाजी—भवानी के अनुग्रह से आपके लिए कुछ भी कठिन नहीं है ।

एसाजी—कुमार, तोरणा दुर्ग के रूप में आपने साम्राज्य-रूपी श्रीमन्दिर का सिंहद्वार ही प्राप्त कर लिया है । अतः आगे भी हम आपकी सफलता ही देखते हैं ।

शिवराज—मित्रों, आप सबकी सहायता से हमारी साम्राज्य-सिद्धि पास ही है । इसलिए आप लोग उपहार देकर चाकण और कोण्डने दुर्गपालों को वश में कर दुर्गों पर अधिकार करे; मैं भी कूटनीति द्वारा पुरन्दर दुर्ग पर अधिकार करके सुपेप्रान्ताधिप दुराचारी अपने मातुल को अधिकारच्युत करता हूं ।

सभी—कुमार की जैसी आज्ञा ।

शिवराज—चलो, अपने-अपने कर्त्तव्य को पूरा करने का प्रयास करें । (सभी चले जाते हैं)

साम्राज्योपक्रम नामक—पहला अंक समाप्त ।

●

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्येसाजीस्तानाजीश्च)

एसाजी :—अप्यभिनन्दितं देवस्याधिपत्यं चाकणदुर्गपालेन ।

तानाजी :—अथ किम् । अपि च तस्य राजनिष्ठापरितुष्टेन देवेन पुनः स एव तत्राधिकारपदे स्थापितः ।

एसाजी :—मयाऽपि स्वामिनियोगानुरोधेन महार्होत्कोचप्रदानेन वशीकृत्य कोण्डनेदुर्गपालं तत्र प्रवर्तितं महाराजशासनम् ।

तानाजी :—देवेनापि परस्परविनाशायोद्यतान् पुरन्दरदुर्गपालात्मजाननुकूलान्विधाय रिक्थांशविभागेन च तान्संतर्प्य स्वायत्तीकृतः पुरन्दरदुर्गः । अनन्तरं च सहसा विजित्य स्वामिना कारागृहे निक्षिप्तो दुर्विनीतो निजमातुलः ।

एसाजी :—अहो ! दैवं सर्वथाऽनुकूलमिति तर्कये ।

दूसरा अङ्क

(उसके पश्चात् एसाजी और तानाजी का प्रवेश)

एसाजी—क्या चाकण दुर्गपालने देव का आधिपत्य स्वीकार कर लिया ?

तानाजी—स्वीकार कर लिया । और उसकी राजनिष्टा से संतुष्ट होकर देव ने पुनः उसे उसी अधिकारपद पर नियुक्त कर दिया ।

एसाजी—मैंने भी स्वामी की आज्ञा के अनुसार बहुमूल्य उत्कोच (घूस) देकर कोण्डने दुर्गपाल को वश में करके वहाँ महाराजा का शासन स्थापित कर दिया ।

तानाजी—देव ने भी, एक दूसरे के नाश-हेतु उद्यत पुरन्दर दुर्गपाल के पुत्रों को अनुकूल कर उनकी पैतृक-सम्पत्ति को उनमें विभाजित करके पुरन्दर दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया । और उसके बाद स्वामी ने सहसा दुर्विनीत अपने मातुल को जीतकर कारागार में छोड़ दिया ।

एसाजी—अहो ! फिर तो दैव सर्वथा अनुकूल है ।

तानाजी :—एवमेतत् । अन्यथा कथं नेताजी सदृशाः प्रवीराः परोक्षेऽपि स्वामिकार्यं साधयेयुः ।

एसाजीः—(सविस्मयम्) अये ! किमुच्यते । नेताजीस्तु यवनसैनिकैर्निहत इति लोकप्रसिद्धिः ।

तानाजीः—तं त्वपगतचेतनं मत्वा परावृत्ते यवनसैनिकगणे प्रकृतिमापन्नः स प्रच्छन्नमुपेत्य माथेरानयतीन्द्रं तदधिगतशस्त्रप्रयोगकौशलस्तदादेशानुरोधेन साम्राज्यसंस्थापनोद्यतं स्वामिनमन्वेष्टुं यतिच्छद्मना राजमाचीदुर्गं प्रातिष्ठत । मार्गे च तद्दुर्गमवरोद्धुं नियुक्तस्य वीजापुरसैन्यस्य नायकं बन्दीकृत्य ।

यतिवसनधरो दृढायताङ्गः, प्रबलरुषाज्वलितः स कुन्तपाणिः ।
नियमितयवनेशसादिजुष्टः, सरभसमेत्य विवेश राजदुर्गम् ॥ १

यतिवसनेति । यतिवसनधरो यतिवेषधारी दृढमायतं चाङ्गं शरीरं यस्य स प्रबलया रूषा क्रोधेन ज्वलितः, कुन्तः पाणौ यस्य स नियमितो निगृहीतो यो यवनेशस्य वीजापुरेशस्य सादी अश्ववारो यवनेशश्यालकस्तेनजुष्टः सेवितः स एत्य सरभसं बलात्कारेण राजमाचीदुर्गं विवेश । पुष्पिताग्रावृत्तम् । १

तानाजी—हाँ, अन्यथा कैसे नेताजी सदृश वीर स्वामी के कार्य को गुप्तरूप में रहकर भी संपादित करते ।

एसाजी—(विस्मय से) अरे क्या कहते हो ? नेता जी तो यवनसैनिकों द्वारा मारे जा चुके, ऐसी प्रसिद्धि है ।

तानाजी—यवन सैनिकों ने उसे मृत जानकर छोड़ दिया । उनके जाने के पश्चात् जब वह चैतन्य हुआ तो प्रच्छन्नरूप से माथेरान-यती के पास पहुंचा, उनसे शस्त्रास्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त की और उनके आदेशानुसार साम्राज्यसंस्थापनार्थ उद्यत स्वामी को यति के वेश में ढूंढ़ने के लिए राजमाची दुर्ग में स्थित हो गया । मार्ग में उस दुर्ग को आक्रान्त करने के लिए नियुक्त बीजापुर सैनिकों के सेनापति को बन्दी बनाकर—

यतिवेश धारण किये हुए, पुष्ट शरीर, क्रोध एवं तेज के कारण भयानक, हाथ में भाला लिए, यवनेश-सैनिक (अश्वारोही) से सेवित वह बलपूर्वक राजमाचीदुर्ग में प्रविष्ट हुआ । १

एसाजी:– विक्रमैकरसा हि तेजस्विनामुपक्रमाः।

तानाजी:—ततश्च स्वामिप्रवृत्तिमुपलभ्य यवनवेषधरः सोऽतिक्रम्याराातिसेनानिवेशं लोहगडदुर्गावस्थितेन स्वामिना समगंस्ताभवच्च सद्य एव स्वामिनो विश्रम्भभाजनम्। संप्रति खलु द्वित्राण्यहानि तेन सह किमपि संत्रयमाणस्तस्मिन्नेव तिष्ठतेऽस्मन्महाराजः।

एसाजी:—दिष्ट्या प्रतिक्षणमेधते स्वामिनः प्रभावः।

तानाजी:—[ऊर्ध्वं विलोक्य] अहो! प्रभाता रजनी। साधयामस्तावच्छस्त्रास्त्रपरिचयं कारयितुं नवसैनिकान्।

एसाजी:—तथा। [इति निष्क्रान्तौ]

इति विष्कम्भकः

[ततः प्रविशति तोरणादुर्गोपवनस्थितः शिवराजः]

शिवराजः—अहो!

एसाजी—तेजस्वी जन का कार्य विक्रम से ही प्रारम्भ होता है।

तानाजी—उसके बाद स्वामी का समाचार मालूम होने पर उसने यवनवेश में शत्रु-शिविर पारकर लोहगढ़दुर्ग में स्वामी से भेंट की और शीघ्र ही उनका विश्वासी बना। इस समय दो तीन दिनों से उसी के साथ कुछ मन्त्रणा करते हुए महाराज दुर्ग में स्थित हैं।

एसाजी—भाग्य से स्वामी का प्रभाव क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रहा है।

तानाजी—(ऊपर देखकर) ओह, प्रभात हो गया। चलो नये सैनिकों को शस्त्रास्त्र का परिचय करायें।

एसाजी—ठीक है। (दोनों चले जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त

(इसके बाद तोरणादुर्ग के उपवन में शिवराज खड़े हैं।)

शिवराज—अहो!

अपास्य दूरं मलिनां तमस्विनीं, क्षणेन तिर्यक् प्रसृतैर्नवांशुभिः ।
लताप्रतानाम्रनिकुञ्जमण्डिता, दिवाकरेणारुणिता वनस्थली ।। २

तथैव स्वातन्त्र्यसूर्येणापि रञ्जितानि सह्याचलनिवासिनां मावले-जनानां मनांसि । संप्रति तेषां चत्वारिंशत्सहस्राणि प्रविविक्षन्ति मम सेनानिवहम् । किंत्वल्पधनो नोत्सहे तान्विनियोक्तुम् । अपि च द्वीपान्तराद्विक्रयार्थं संप्राप्तं महान्तंशस्त्रास्त्रायुधसंचयं सार्धलक्षेणाऽपि क्रेतुं, प्रार्थयते मां फिरङ्गी वणिक्पतिः । यदृच्छयोपेतोऽयमवसरो मया कथं ग्रहीतव्यः । अहो !

स्वातंत्र्यवह्निज्वलितः समन्ततः, सह्याचलो मोदयते मनो मे ।
वनेचरान् सैन्यगणे नियोक्तुं; न चास्म्यलं तन्नितरां दुनोति ।। ३

(पुरतो विलोक्य) एष गृहीतसङ्केतो वीर इत एवाभिसर्पति ।

अपास्येति । तिर्यक् प्रसृतैर्विततैर्नवांशुभिः क्षणेन मलिनां तमसाविलां तमस्विनीं रात्रीं दूरमपास्य दूरीकृत्येत्यर्थः दिवाकरेण सूर्येण लतानां प्रतानैश्चाम्रैश्च निकुञ्जैश्च मण्डिता भूषिता वनस्थली वनप्रदेशः अरुणिता रञ्जिता । वंशस्थवृत्तम् । २

स्वातंत्र्येति । समन्ततः स्वातंत्र्यमेव वह्निस्तेन ज्वलितः समिद्धः सह्याचलः सह्याद्रिनिवासिनो जना इत्यर्थः मे मनो मोदयते । च वनेचरान् मावलेजनान् सैन्यगणे नियोक्तुमलं नास्मि तन्मे मनो नितरां दुनोति संतापयति । उपजातिवृत्तम् । ३

सूर्य ने अपनी तिरछी किरणों के प्रसार से क्षणमात्र में ही रात्रि के मलिन अन्धकार को दूर करके लता आम्रमंजरी और निकुंज से विभूपित वनस्थली को रंजित कर दिया । २

उसी प्रकार स्वातंत्र्य सूर्य द्वारा सह्याद्रि निवासी मावलों का हृदय हर्षित हो उठा है, संम्प्रति उनमें से चालीस हजार जन मेरी सेना में सम्मिलित होना चाह रहें हैं । परन्तु धनाभाव के कारण उन्हें नियुक्त करने का साहस नहीं हो रहा है । और दूसरी ओर द्वीपान्तर (विदेश) से आगत फिरंगी वणिकराज डेढ़ लाख रुपयों में अनेकानेक महान् शस्त्रास्त्र क्रय करने के लिए निवेदन कर रहा है । मैं इस शुभ अवसर का कैसे लाभ उठाऊँ ? अहो—

स्वतन्त्रता की अग्नि से प्रदीप्त सह्याद्रि निवासियों का हृदय, (सह्याद्रिवासी जिनका हृदय स्वतन्त्र्य-प्रकाश से चमक उठा है) मेरे मन को एक ओर हर्षित कर रहा है, दूसरी ओर मावलों को अपनी सेना में सम्मिलित करने की मेरी असमर्थता मुझे सन्तप्त कर रही है । ३

(सामने देखकर) संकेतानुसार यह वीर यहीं आ रहा है ।

नेताजी:—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

शिवराजः—अपि चिन्तितस्त्वया दुर्गसंतरणोपायः ।

नेताजी:—प्रथमं तावदादिशतु देवो मां राजमाचीदुर्गं प्रस्थातुम् । अल्पैरपि भटैरहं नाशयिष्यामि तद्दुर्गावरोधगणम् ।

शिवराजः—वीर ! संप्रति तु कथमपि शस्त्रास्त्रपरिक्रयेणाधिष्ठानबलं संनाह्य तदजय्यं विधातुं स्वायत्तीकृतानां च दुर्गाणां प्राकारपरिखादिभिर्दुष्प्रधर्ष्यत्वमापादयितुमतीवोत्कण्ठितोऽस्मि ।

नेताजी:—देव ! युगपत्समुपस्थितानां व्यवसायानां क्रमेणैवोपपन्नो विनियोगः । तत्पूर्वं राजमाचीरक्षण एव तावदात्मानमभिनिवेशयतु देवः । एवमुत्तरोत्तरविजयेन भविष्यति देवस्य साम्राज्यसिद्धिः ।

नेताजी—(प्रवेशकर), विजय हो देव ।

शिवराज—क्या तुमने दुर्ग को विजय करने का उपाय सोचा ?

नेताजी—देव ! पहले मुझे राजमाचीदुर्ग की ओर प्रस्थान करने का आदेश दें । कुछ ही सैनिकों की सहायता से दुर्ग के अवरोधकों को नष्ट कर दूँगा ।

शिवराज—वीर ! सम्प्रति तो मैं येन केन प्रकारेण अपनी वर्तमान सैन्य-शक्ति को सुदृढ़ और शस्त्रास्त्र क्रय कर उसे दुर्जेय बनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ । और अपने अधिकार में आये हुए दुर्गों को चहारदीवारी और खाईं आदि के निर्माण द्वारा दुर्लंघनीय बनाना चाहता हूँ ।

नेताजी—देव, समुपस्थित कार्यों को एक-एक करके सम्पन्न करना ही उचित है । पहले राजमाचीदुर्ग की रक्षा का उपाय करने की ओर ध्यान दें इस प्रकार उत्तरोत्तर विजय द्वारा आप एक साम्राज्य स्थापित कर लेंगे ।

शिवराजः—(निःश्वस्य) सर्वथा साधनविकलस्य कुतो मे साम्राज्य-संस्थापनसौभाग्यम् । यतः—

विना भृतिं भृत्यगणा प्रिया मे, विनाऽग्रभित्ति प्रवराश्च दुर्गाः ।
विना बलं मे प्रबलोऽन्तरात्मा, सर्वेऽवसीदन्ति सह प्रवीर ! ॥४

केवलमिदानीमवशिष्यते चरमं विधेयम् । त्वया सह भवानी-मन्दिरमुपाश्रित्याभीष्टं संपादयितुमद्य प्रातरादिष्टोऽस्म्यहं भगवत्या परदेवतया । यदि तत्रापि मे भाग्यविप्लवस्तदानीं तु—

त्वय्येव वीराग्रसरे समग्रां, विन्यस्य राष्ट्रोद्धरणप्रवृत्तिम् ।
अकिंचनो दण्डकपालपाणिः परिव्रजिष्यामि परात्मनिष्ठः ॥५

नेताजीः—देव ! धर्मराज्यसंस्थापनोद्धृतकृपाणस्य तवास्थान एवायं निर्वेदः । यतः—

अन्तरायनिकषैः परीक्षिताः प्राप्नुवन्ति मनुजा महत्पदम् ।
विघ्नविक्लवधियो निरुत्सवाः हेलयापि निपतन्त्यधीश्वराः ॥६

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर सर्वथा साधनरहित, मुझे साम्राज्य स्थापित करने का सौभाग्य कहाँ ? क्योंकि—

मेरे सेवक वृत्ति के वेतन अभाव में, अच्छे-अच्छे दुर्ग चहारदीवारी न होने के कारण और शक्ति (सैनिक शक्ति) के अभाव में मेरी प्रबल-अन्तरात्मा, ये सब एक साथ ही भग्न हो रहे हैं । ४

अब एक मात्र करणीय शेष यह है कि तुम्हारे साथ मैं आज ही प्रातः काल भवानी के मन्दिर में चलकर अपने अभीष्ट की याचना करूँ, जैसा कि परमशक्ति भगवती का आदेश है । यदि वहाँ भी भाग्य ने साथ छोड़ा, फिर तो—

समस्त राष्ट्र के उद्धार का कार्य, वीराग्रणी तुम्हारे ही ऊपर छोड़ मैं सर्वशक्तिमान में निष्ठा भाव रखकर, दण्ड और कपाल ले संन्यासी बनकर विचरण करूँगा । ५

नेताजी—धर्मराज की स्थापना के लिए कृपाण धारण करनेवाले आपके लिए यह चिन्ता का विषय है ही । क्योंकि—

कठिनाई (बाधाएँ) रूपी कसौटी पर खरे उतरने के पश्चात् मनुष्य महान पद प्राप्त करता है, विघ्न से शीघ्र व्याकुल होनेवाला सम्राट् भी सरलता से निम्न पद को प्राप्त हो जाता है । ६

तद् धैर्यमवलम्ब्य साम्राज्यसंपादनार्थं बद्धपरिकरो भव । तवानुशासनपरेणैव मया वर्तितव्यमित्यादिष्टोऽस्मि सिद्धतापसेन । न चैतदन्यथा भवितुमर्हति । तद्—

अनन्यभावः परदेवतायां, मनः समाधाय लभस्व वाञ्छितम् ।
किमाश्रितः कल्पतरुं कदाचिन्निवर्तते कोऽप्यनवाप्तकामः ॥७

शिवराजः—वीर ! सम्यगनुबोधितोऽस्मि । कः कोऽत्र भोः !

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—भवानीमन्दिरमार्गमादेशय ।

अङ्गरक्षकः—इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति) एतन्मन्दिरद्वारं तत्प्रविशतु देवः ! (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—वीर ! अत्र स्थित्वा मां प्रतिपालय । यावदहं भगवतीमाराध्य प्रत्यावर्ते ।

नेताजीः—तथा (इति द्वारदेशमधितिष्ठति)

शिवराजः—(मन्दिरं प्रविश्य साश्रु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य स्तौति)

(कर्णाटरागेण त्रितालेन गीयते)

इसलिए धैर्य धारण करके साम्राज्य स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हो जायें । मुझे सिद्ध तपस्वी का आदेश हुआ है कि मैं आपके आदेशानुसार कार्य करूँ । यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता । अतः परमशक्तिमान् में अनन्य भाव से हृदय को केन्द्रित करके अभीष्ट की पूर्ति करें । क्या कल्पतरु के आश्रित रहकर भी कोई असफल मनोरथ रहा है ।७

शिवराज—वीर, तूने उचित स्मरण दिलाया । कौन है यहाँ ?

अङ्गरक्षक—(प्रवेशकर) आदेश करें देव !

शिवराज—भवानी-मन्दिर के मार्ग का निर्देश करो ।

अङ्गरक्षक—इधर से, इस ओर से देव (सभी घूमकर चलते हैं) यह है मन्दिर का द्वार, चलें देव । (चला जाता है)

शिवराज—वीर, यहीं रुककर मेरी प्रतीक्षा करो । मैं जब तक देवी भगवती की आराधना कर वापस आता हूँ ।

नेताजी—ठीक है । (कहकर द्वार पर बैठ जाता है)

शिवराज—(मन्दिर में प्रवेश कर साश्रु और साष्टांग प्रणाम कर स्तुति करते हैं) (कर्णाटराग तीनताल में गाया जाता है)

तारय तव सुतमम्ब ! भवानि !

प्रबलयवनरिपुगलितविभावम् । प्रलयपयोनिधिविलुलितनावम्,
पालय परममृडानि ! ॥ तारय—१

विबुधनुते ! वनुते तव दासः । विजयरमां हुतदिव्यविलासः
वारय मम विषमाणि ॥ तारय—२

त्वमसि ममैकं परमं शरणम्, कलयसि यदि हितमार्योद्धरणम् ।
दारय विघ्नशतानि ॥ तारय—३

वितरसि यदि नहि करुणालेशम् । धृत्वा ममाटनं यतिवेशम् ।
निश्चितमयि शर्वाणि ! ॥ तारय—४

तारयेति । हे अम्ब ! भवानि ! तव सुतं तारय आपद्भ्यः उद्धरेत्यर्थः । प्रबलाश्च ते यवनरिपवश्च तैः साधनभूतैर्गलितो नष्टो विभावः प्रभावो यस्य तं प्रलयस्य यः पयोनिधिः समुद्रस्तस्मिन् विलुलिता चञ्चला नौर्यस्य तं हे परममृडानि ! पालय रक्ष । विबुधैर्देवैर्नुता स्तुता तत्सम्बुद्धौ हे विबुधनुते ! हुताः परित्यक्ता दिव्या विलासा येन स तव दासो विजयस्य रमां श्रियं वनुते याचते । मम विषमाणि विपदो वारय, निवारय । त्वं ममैकं परमं शरणमसि । यदि आर्याणां भारतीयानामुद्धरणं हितं श्रेयस्करं कलयसि मन्यसे तदा मम विघ्नशतानि दारय नाशयेत्यर्थः । अयि शर्वाणि यदि त्वं करुणायाः कृपायाः लेशं लवं नहि वितरसि यदि त्वमल्पमप्यनुग्रहं न करिष्यसीत्यर्थः तदा यतिवेषं धृत्वा ममाटनं भ्रमणं निश्चितम् ।

हे अम्ब ! हे भवानि !! अपने सुत का उद्धार करो । प्रबल यवन शत्रुओं के कारण उसका प्रभाव नष्ट हो रहा है, प्रलय-समुद्र में नाव डाँवाडोल है, हे पूज्यपार्वति ! रक्षा करो । १ हे देववन्दिते ! तुम्हारा यह दास जिसने विलासादि को होम कर डाला है, विजयश्री की याचना करता है । उसकी विपत्तियों का निवारण करो । २ तुम ही मेरे लिए एक मात्र शरण हो । यदि भारतीयों का उद्धार श्रेयस्कर समझती हो तो मेरे शतशः विघ्नों को नष्ट करो । ३

हे शर्वाणि ! यदि तुम अपनी करुण-दृष्टि मेरे ऊपर नहीं डालती तो निश्चित है कि मैं यतिवेश में भ्रमण करूँगा । ४

(आकाशे) मा शुचः सहायसाध्यास्ते सिद्धयः।

शिवराजः—(आकर्ण्य) शरणागतवत्सले ! त्वदनुग्रहपरवशा एव मे प्रार्थितसिद्धयः। (प्रणम्य द्वारदेशमुपसृत्य) वीर ! त्वदधीना मे सिद्धयः इति भगवत्या आदेशः। तन्ममाङ्गरक्षकबलेनाक्रम्य बीजापुरप्रदेश-माऽऽहरापेक्षितं हिरण्यसञ्चयम्।

नेताजीः—देव ! पुरोवर्तिजीर्णदेवालयकोणप्रस्तरप्रच्छन्नो महान् निधिस्त्वयोत्खातव्य इति मम पुनरान्तरः प्रत्ययः।

शिवराजः—न मृषा भवितुमर्हति तवायं प्रतिभासः। यतः—

संयतेन्द्रियमनाः प्रसन्नधीः, प्रत्यगात्मनि च यः समाहितः।
तस्य यत्फुरति भाविदर्शनं, नैव तद्भवति संशयावहम् ॥८

कः कोऽत्र भोः !

संयतेति। संयतानि निगृहीतानीन्द्रियाणि मनश्च यस्य स प्रसन्नधीः प्रत्यगात्मन्यन्तरात्मनि च यः समाहितो निश्चलं स्थितस्तस्य यद्भाविदर्शनं भाविनोऽर्थस्य ज्ञानं स्फुरति तत्संशयावहं शङ्कास्पदं नैव भवति। रथोद्धता-वृत्तम्। ८

(आकाशवाणी) निराश न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा।

शिवराज–(सुनकर) हे शरणागतवत्सले ! तुम्हारे अनुग्रह पर ही मेरे कार्य की सिद्धि निर्भर है। (प्रणाम कर, द्वार पर पहुँच) वीर, भगवती का आदेश है कि मेरे कार्य की सिद्धि तुम्हारे अधीन है। अतः मेरे अङ्गरक्षक के साथ बीजापुर पर आक्रमण करके अपक्षित धन आदि एकत्र करो।

नेताजी—देव, सामने स्थित जीर्ण मन्दिर के कोने में खोदवाएँ तो प्रस्तर से ढकी हुई विशाल धनराशि प्राप्त होगी, यह मेरा गहरा विश्वास है।

शिवराज—तुम्हारा दृष्टिकोण असत्य नहीं हो सकता। क्योंकि—

संयतेन्द्रिय, स्थिर और प्रसन्नचित्त व्यक्ति के मन में भविष्य ज्ञान प्रतिभासित होता है, वह सन्देहास्पद नहीं हो सकता। ८

कौन, कोई है।

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—शिल्पिमुख्यं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षकः—तथा (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—वीर ! माथेरानयतीन्द्रवचसा खलु प्रोत्साहितोऽस्मि ।

शिल्पिमुख्यः—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

शिवराजः—(जीर्णदेवालयं निर्दिश्य) तत्र खनित्वा यदुपलभ्येत तत्सत्वरमिहाऽऽहर ।

शिल्पिमुख्यः—तथा । (इति खनित्वा भाण्डान्याहृत्य) दिष्ट्याऽधिगतान्येतानि द्रव्यपूर्णानि भाण्डानि निखातभूमिविवरात् ।

(इति स्थापयति)

अङ्गरक्षक—(पहुँचकर) देव की विजय हो ।

शिवराज—प्रमुख शिल्पी को देखना चाहता हूँ ।

अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

शिवराज—वीर, मैं वस्तुतः माथेरानयतीन्द्र के वचनों से ही प्रोत्साहित हुआ हूँ ।

मुख्यशिल्पी—(पहुँचकर) देव की विजय हो ।

शिवराज—(जीर्ण देवालय की ओर संकेत करके) वहाँ खोदकर जो कुछ भी प्राप्त करो तुरन्त ले आओ ।

मुख्यशिल्पी—जो आज्ञा । (खोदकर भाण्डों को लेकर आता है) भाग्यवशात् खोदी हुई धरती से द्रव्यों से पूर्ण ये भाण्ड प्राप्त हुए हैं ।

(रख देता है) ।

शिवराजः—रेचयैतान्यत्र शिलापट्टे ।

शिल्पिमुख्यः—तथा [रेचयित्वा निष्क्रामति]

नेताजीः—देव ! बहूमूल्यो लक्ष्यतेऽयं महानिधिः ।

शिवराजः—अये ! नैष निधिः किन्तु साक्षात् स्वातन्त्र्यदेवतैवास्मत्पुरतः समुल्लसति । वीर !

अवेहि नैनं पुरतः प्रसारितं, हिरण्यरत्नप्रचयं महानिधिम् ।
एतत्वमोघायुधसंचयप्रदं, साम्राज्यलक्ष्म्या वपुरेव मूर्तिमत् ॥६

नेताजीः—देव ! सर्वत्र धैर्यमूलान्येव भद्राणि ।

शिवराजः—एवमेतद् । कः कोऽत्र भोः !

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—मणिकारं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षकः—तथा [इति निष्क्रान्तः]

अवेहीति । एनं पुरतः प्रसारितं हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां च प्रचयं राशिं महानिधिं न अवेहि न जानीहि । तु एतदमोघानि च तान्यायुधानि तेषां संचयं प्रददातीति तादृशं साम्राज्यलक्ष्म्या मूर्तिमद् वपुरेवेत्यवेहीत्यर्थः । उपजातिवृत्तम् । अत्रापह्नुतिरलङ्कारः । ६

शिवराज—इस शिलापट्ट पर उन्हें खाली करो ।
मुख्यशिल्पी—जो आदेश (भाण्डों को खाली करके जाता है)
नेताजी—देव, बहुमूल्य महानिधि है यह ।
शिवराज—ओह, निधि नहीं यह तो साक्षात् स्वातंत्र्य-देवी हमारे सामने प्रकाशित हो रही हैं वीर !

सामने बिखरी हुई इसे हिरण्यरत्न आदि महानिधि की राशि न समझो, यह महाशक्तिमती साम्राज्य-लक्ष्मी हैं जो अमोघ शस्त्रास्त्रों को एकत्र करने के साधन स्वरूप मूर्तिमान हो उठी हैं । ६

नेताजी—देव, धैर्य ही सर्वत्र मंगल का मूल है ।
शिवराज—हाँ यही । कौन है यहाँ ?
अङ्गरक्षक—(पहुँकर) आदेश करें, देव !
शिवराज—मणिकार को बुलाओ ।
अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

शिवराजः—संप्रति प्रभविष्याम्यहं संनाहयितुं मम वीरनिवहान्। अथ कियत्परिमाणोऽयं निधिः परिकल्प्यते।

नेताजी:—देव ! पर्याप्त एवायमस्मत्प्रयोजनाय।

मणिकारः—(प्रविश्य) विजयतां देवः।

शिवराजः—अवधार्यतामस्य कोशसंचयस्य मूल्यपरिमाणम्।

मणिकारः—(निरीक्ष्य) देव ! सूक्ष्ममानेनायं दशलक्षहिरण्यार्घो भवितुमर्हति।

शिवराजः—तावत्पत्र आरोप्य विस्तरेण दर्शयास्य मूल्यपरिच्छेद-व्यञ्जकं परिसंख्यानम्।

मणिकारः—तथा। (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः—वीर ! महानेषोऽनुग्रहः परदेवतायाः। यतः संप्रति खलु मम।

शिवराज—अब सेना तैयार करने योग्य मैं हो गया। तुम इस निधि को कितने मूल्य की अनुमान करते हो।

नेताजी—देव, हमारे प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है।

मणिकार—(पहुँचकर) विजय हो देव।

शिवराज—इस धनराशि का मूल्य अनुमान करो।

मणिकार—(निरीक्षण करके) भलीभाँति निरीक्षण करने पर यह लगभग दस लाख मूल्य का प्रतीत होता है।

शिवराज—इसके मूल्य का परिमाण मुझे विस्तार से लिखित रूप में दे दो।

मणिकार—जो आज्ञा। (कथनानुसार करता है)

शिवराज—वीर, शक्तिमान का परम अनुग्रह है यह। क्योंकि इस समय मेरी—

शस्त्रास्त्रसंनद्धरणोत्सुका भटाः, सद्यः पराहत्य परप्रवीरान् ।
अत्युत्कटं मर्मविदारणं द्विषां प्रकाशयिष्यन्त्यतुलं पराक्रमम् ॥१०

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) एव द्विभाषसमेतः फिरङ्गी देवं द्रष्टुमिच्छति ।

शिवराजः—शीघ्रमेनं प्रवेशय ।

अङ्गरक्षकः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

द्विभाषः—(फिरङ्गिणं निर्दिश्य) एष महाराजस्यसुप्रभातमावेदयति ।

शिवराजः—प्रीतोऽस्म्यस्य समुदाचारेण । क्रीतो मया सार्धलक्षेणायुधसंचय इति तमावेदय ।

द्विभाषः—तथा । (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः—अपि सुव्यवस्थितोऽयं व्यवहारः ।

द्विभाषः—अथ किम् । एष पुनर्महाराजस्यानुग्रहमभिनन्द्य गमनायानुज्ञां याचते ।

सेना के वीर जो युद्ध करने के लिए सनद्ध और उत्सुक हैं, शस्त्रास्त्रों से सज्जित हो अपने पराक्रम को अधिक सफलता से दिखला सकेंगे और उनका शौर्य शत्रु के अन्तः को विदीर्ण करेगा । १०

अङ्गरक्षक—(प्रवेश कर) द्विभाषिए के साथ विदेशी, देव का दर्शन चाहता है ।

शिवराज—तुरन्त उपस्थित करो ।

अङ्गरक्षक—जो आज्ञा । (जाता है)

द्विभाषी—(विदेशी को दिखाकर) यह महाराज को प्रातः का नमस्कार निवेदन कर रहे हैं ।

शिवराज—मैं इसके व्यवहार से प्रसन्न हूं । कह दो कि मैंने इसके शस्त्रास्त्रों को डेढ़ लाख में खरीद लिया ।

द्विभाषी—अस्तु जो आदेश । (कहता है)

शिवराज—क्या यह व्यवस्था मान्य है ?

द्विभाषी—जी हाँ । आपके अनुग्रह का आभार मानते हुए जाने की आज्ञा चाहते हैं ।

मणिकारः–(उपसृत्य) एतत्सविस्तरं परिसङ्ख्यानम् (इति पत्रमर्पयति)

शिवराजः—(पत्रमादाय वाचयित्वा) द्विभाष ! आगामुकमप्यायुध-संचयं वयमेव क्रेष्याम इति वणिक्पतिमवगमय ।

द्विभाषः—तथा (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः—अये मणिकार ! प्रापयैतावावेशिकमन्दिरम् । मद्वचना-च्चोच्यतां तत्राधिकृतोऽध्यक्षो यदयं वैदेशिकः सपरिवारमातिथ्येन सम्माननीय इति ।

मणिकारः—तथा (इति निष्क्रान्तास्त्रयः)

शिवराजः—कः कोऽत्र भोः !

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

मणिकार—(आकर यह सविस्तार तालिका है । (पत्र देता है)

शिवराज—(पत्र लेकर और पढ़ने के वाद) द्विभाष ! वणिक्पति को सूचित कर दो कि हम इनसे आनेवाला शस्त्रास्त्र भी खरीद लेंगे ।

द्विभाषी—जैसा आदेश । (उससे कहता है ।)

शिवराज—मणिकार ! इन दोनों को अतिथिभवन में ले जाओ । मेरी ओर से अध्यक्ष को निवेदन करो कि यह विदेशी सपरिवार राज्य के अतिथि रूप में सम्मानित किया जाय ।

मणिकार—जैसी आज्ञा । (तीनों चले जाते हैं)

शिवराज—कौन, कौन, कोई है ?

अङ्गरक्षक—(प्रवेशकर) आज्ञा देव !

शिवराज—मन्त्रणागृह का मार्ग निर्देश करो ।

अङ्गरक्षकः—इत इतो देवः। (सर्वे परिक्रामन्ति) एतन्मंत्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः सानुगः (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति मंत्रगृहावस्थिता मन्त्रिणः)

शिवराजः—(प्रविश्य) मन्त्रिणः दिष्ट्या संपन्नोऽस्माकं मनोरथः।

मन्त्रिणः—(उत्थाय) वर्धतां देवोऽभीष्टसम्पदा।

(इति शिवराजमनु सर्वे उपविशन्ति)

शिवराजः—सचिव! त्वं तावदविलम्बेन निर्माय नूतनं दुर्भेद्य-प्राकारादिपरिवेष्टितं राजगडदुर्गमापादयास्य राजधानीयोग्यताम्। यावत्तत्र स्थिता वयं राजकार्याणि पश्येम।

सचिवः—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—वीर! त्वमपि फिरंगिणः क्रीतैरायुधैः संनाह्य माव-लेजनवाहिनीं कल्याणजयार्थमस्माभिर्नियुक्तमावाजीवीरं संप्रतिपद्यस्व। सद्य एव—

अङ्गरक्षक—इधर से देव, इधर से। (सभी चलते हैं) यह मंत्रणा-गृह का द्वार है, साथियों सहित प्रवेश करें देव। (चला जाता है)

(उसके पश्चात् मंत्रणागृह में मंत्रिगण बैठे दिखायी पड़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेश कर) मंत्रियों भाग्य से हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ।

मन्त्रिगण—(उठकर) देव का मनोरथ पूर्ण होता रहे। (शिवराज के बैठने के बाद सभी बैठते हैं।)

शिवराज—सचिव, तुम शीघ्र ही प्राकारादि से घिरे हुए दुर्भेद्य एक नवीन दुर्ग राजगढ़ का निर्माण कर उसे राजधानी के योग्य तैयार करो। हम उस दुर्ग से राजकार्य देखेंगे।

सचिव—जैसी आज्ञा देव—(कहकर चला जाता है)

शिवराज—वीर तुम भी तुरन्त ही विदेशी वणिक् के खरीदे हुए शस्त्रास्त्रों से मावलों की सेना तैयार करके, कल्याण विजय के लिए प्रेषित आवाजी वीर के साथ जाकर सम्मिलित हो जाओ। तुरन्त ही

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुः समूर्जिता, विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वाः ।
स्वातंत्र्यसम्भावनया समेधिताः; प्रयान्तु मे वन्यपदातिसंघाः ॥११

नेताजीः—यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—अमात्य ! त्वयि विनिहितराज्यभारोऽहमपि तावत्सेनानायकेन सह कोंकणजयार्थं प्रतिष्ठे । तदवेक्षस्वाद्यप्रभृति सर्वाणि राजकार्याणि ।

तानाजीः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं निधिसंप्राप्तिनामा

द्वितीयोऽङ्कः

सुतीक्ष्णेति । सुतीक्ष्णाः निशिताः भल्लाश्च असयश्च ते च धनूंषि च तैः समूर्जिताः प्रवला विशालाः, यास्तूण्यो निषङ्गास्ताभिः परिणद्धे वद्धे पार्श्वे येषां ते स्वातन्त्र्यस्य संभावनया सम्यग्भावनया समेधिताः प्रोत्साहिता मे वन्यपदातिसंघाः प्रयान्तु । उपजातिवृत्तम् । ११

तीक्ष्ण भालों, कृपाणों, धनुषों से प्रवल, कटि-प्रदेश में तूणीर (तरकस) कसे हुए, स्वातन्त्र्य-भावना से भली-भाँति प्रोत्साहित, वन्यजनों (वनवासियों) की हमारी पैदल सेना प्रस्थान कर रही है । ११

नेताजी—जैसी देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—मंत्रिन् ! राजकाज का भार तुम पर छोड़कर मैं भी सेनानायक के साथ कोंकण-विजय के लिए प्रस्थान कर रहा हूं । इसलिए आज से सभी राजकार्य की व्यवस्था करो ।

तानाजी—जैसी आज्ञा देव । (सभी जाते हैं)

निधिप्राप्ति नामक

द्वितीय अङ्क समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजगडदुर्गप्रासादावस्थितो मन्त्रिद्वितीयः शिवराजः)

शिवराजः—मन्त्रिन्! सुव्यवस्थितेऽपि राज्यतंत्रे कथमद्यापि निर्वृतिं न व्रजति मेऽन्तरात्मा।

रात्रिंदिवं रिपुगणान् शतशो निहत्य, नीतो वशं प्रसभमेष मया प्रदेशः।
नायं तथापि परिपन्थिवधाकुलो मे, तृप्तिं प्रयाति नितरां तृषितः कृपाणः ॥१

मन्त्री—देव! न खल्वल्पीयसाऽर्थेन परितुष्यन्ति तेजस्विनः।

उद्भास्य शैलशिखरोच्छ्रितपादपाग्रं, तेजोनिधिः किमुदितो विरमेद्विवस्वान्।
अप्युद्गतो गगनमध्यपदं क्रमेण, धाम्ना निजेन निखिलं भुवनं चकास्ति ॥२

रात्रिंदिवमिति। रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवं शतशो रिपुगणान्निहत्य मयैप प्रदेशः प्रसभं बलेन वशं नीतः। तथापि परिपन्थिनां रिपूणां वधायाकुलो व्यग्रोऽयं मे नितरामतिशयेन तृषितः कृपाणः खड्गस्तृप्तिं न प्रयाति। वसन्ततिलकावृत्तम्।१

उद्भास्येति। शैलस्य गिरेः शिखरे उच्छ्रितो यः पादपो वृक्षस्तस्याग्रमुद्भास्य प्रकाश्य तेजोनिधिरुदितो विवस्वान् सूर्यः किं विरमेत्। नैव विरमतीत्यर्थः। अपि क्रमेण गगनस्य मध्यपदं मध्यप्रदेशं गतः स निजेन धाम्ना तेजसा निखिलं भुवनं चकास्ति प्रकाशयते। अत्रान्तर्भावितण्यर्थश्चकास्तिः। वसन्ततिलकावृत्तम्। २

तीसरा अंक

(उसके बाद मन्त्री के साथ राजगडदुर्ग में शिवराज आते हैं)

शिवराज—मन्त्रिन्, राज्यतन्त्र भली भाँति व्यवस्थित होने पर भी मेरा हृदय अशान्त ही क्यों है?

यद्यपि रात-दिन सैकड़ों शत्रुओं का वध करके हमने अपनी शक्ति से इस प्रदेश को अधिकार में कर लिया, तथापि शत्रुओं का वध करने के लिए उत्सुक मेरी तलवार अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुई। १

मंत्री—देव, तेजस्वियों को थोड़ी सफलता से सन्तोष नहीं होता—

क्या सूर्य उदय होकर पर्वत की चोटियों पर उगे (स्थित) हुए वृक्षों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम लेता है, नहीं, वह धीरे-धीरे गगन के मध्य तक पहुँचकर अपनी किरणों के प्रकाश से समस्त जगत् को प्रकाशित करने लगता है। २

संप्रति खल्वस्मदुपक्रमसंरब्धो बीजापुरेशो महता सैन्येन सहसाऽस्मानभियोक्ष्यत इत्याशङ्कते मे हृदयम् ।

शिवराजः—मयाऽप्येतदेव विमृश्यते । (नेपथ्ये)

वैतालिकः—विजयतां देवः ।

जनपदहितदक्षो नीतियोगप्रतिष्ठो, विदलितरिपुसंघः स्वाभिलाषे वितृष्णः ।
शरणमुपगतानां दुर्गतानां शरण्यस्तपनकुलमणे ! त्वं राजसेऽमोघवीर्यः ॥३

शिवराजः—(आकर्ण्य) अहो, नयप्रयोगाश्रयणेन सुखसाध्या भविष्यन्त्यरातय इति नास्त्यत्रौत्सुक्यकारणम् । तथापि सर्वात्मना बलोपचय आधीयतां यत्नः ।

जनपदेति । जनपदेभ्यो यद् हितं तस्मिन् दक्षः सावधानो नीतेर्नयस्य योगाः प्रयोगास्तेषु प्रतिष्ठा प्रकर्षेण स्थितिर्यस्य विदलिता नाशिता रिपूणां संघा येन स्वस्याभिलाषे कामनाविषये विगता तृष्णा यस्य दुर्गतानामापदभिभूतानां शरणमुपगतानां शरण्यः शरणे साधुः, अमोघमनिष्फलं वीर्यं पराक्रमो यस्य स त्वं हे तपनकुलस्य सूर्यवंशस्य ! मणे राजसे शोभसे । मालिनीवृत्तम् । ३

अब हमारे इस प्रयास के आरम्भ हो जाने के कारण बीजापुर नरेश विशाल सेना सहित हमारे ऊपर अचानक आक्रमण करेगा, ऐसी शंका होती है ।

शिवराज—मुझे भी शंका है । (नेपथ्य में)

वैतालिक—विजय हो, देव ।

हे सूर्य-कुल के मणि ! देश हित के कार्यों में रत, नीति में निपुण और स्थिर शत्रु-समूह का नाश करके, अपने स्वार्थ का परित्याग करनेवाले दीन-दुखियों के लिए शरण-भूमि, तुम्हारा अप्रतिम वल वीर्य से युक्त तेज चमक रहा है । ३

शिवराज—(सुनकर) ओह, नीति-प्रयोग के सहारे सहज ही में शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो जायेगी, इसमें उतावली और चिन्ता की आवश्यकता नहीं । तथापि हमें सैन्यसंगठन के लिए प्रयास करना चाहिए ।

मन्त्री—पूर्वमेव मयादिष्टः सेनानायकः पदातिदलसंग्रहाय ।

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । एष कोंकणप्रान्तात् संप्राप्तो गोंवलकरसामन्तो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

सामन्तः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः । सर्वत्र विजयशालिनो महाराजस्य प्रणयपुरःसरमुपायनीक्रियत एष भवानीखड्गः ।

देवानां नवविजयध्वजो रणाग्रे, दैत्यानां प्रलयकृदेव धूमकेतुः ।
पापानां हृदयविदारणो महोग्रः, खड्गोऽयं तव परिकल्पितो भवान्या ॥४

तत्स्वीकृत्यैनमनुगृहाण तव दासजनम् ।

शिवराजः—(सानन्दं स्वीकृत्य निरीक्ष्य च) भगवति ! परदेवते !

देवानामिति । रणाग्रे देवानां नवश्चासौ विजयध्वजः दैत्यानां प्रलयं विनाशं करोतीति प्रलयकृदेव धूमकेतुः पापानां दुष्कृतानां हृदयानां विदारणो भेदको महोग्रोऽयं खड्गो भवान्या तव परिकल्पितः समर्पितः । प्रहर्षिणीवृत्तम् । अत्र रूपकालङ्कारः ।४

मन्त्री—मैंने सेनापति को पैदल सेना सङ्गठित करने का आदेश पहले ही दे दिया है ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव । कोंकणप्रदेश से आये गोंवलकर सामन्त द्वार पर स्थित हैं ।

शिवराज—उन्हें उपस्थित करो ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा (चला जाता है)

सामन्त—(प्रवेश कर) महाराज की जय हो । सर्वत्र विजय प्राप्त करनेवाले आपको भवानी का दिया हुआ यह कृपाण मैं सादर भेंट करता हूँ ।

युद्ध-भूमि में देवों के लिए नवविजयध्वज की भाँति लहरानेवाली, दैत्यों के लिए धूमकेतु-सदृश विनाशकारिणी कलुष-हृदयों को विदीर्ण करनेवाली यह तलवार भवानी नें तुम्हारे लिए प्रदान की है । ४

अतः इसे स्वीकार कर सेवक को अनुगृहीत करें ।

शिवराज—(सानन्द स्वीकार कर और निरीक्षण करके) भगवति ! परदेवते !

नैष प्रभाज्वलिततीक्ष्णकरालधारो, निस्त्रिंश एव कटिबन्धतटावलम्वी।
किं त्वम्ब! दुष्कृतवधार्थमनन्तमूर्तेः,खड्गात्मनापरिणतोऽस्तितवावतारः॥५

यावज्जीवमेष भवतु मे प्राणसारः। (इति शिरसाऽभिवन्द्य धारयति)

सामन्तः—महानेषोऽनुग्रहः महाराजस्य। (इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री—देव! एतन्मण्डलाग्रमण्डितस्य भविष्यति तव सर्वत्राप्रतिहत-प्रसरो विजयध्वज इति विभावये।

द्वारपालः—(प्रविश्य) एष आबाजीवीरो द्वारि सम्प्राप्तः।

शिवराजः—शीघ्रमेनं प्रवेशय।

द्वारपालः—तथा। (इति निष्क्रान्तः)।

नैष इति। प्रभया ज्वलितश्चासौ तीक्ष्णा च कराला च धारा यस्य स एष कटिबन्धतटावलम्वी निस्त्रिंश एव न किन्तु हे अम्ब! दुष्कृत-वधार्थं खड्गात्मना परिणतः परिणामं प्राप्तोऽनन्ता मूर्तयो यस्यास्तस्या-स्तवावतारोऽस्ति। वसन्ततिलकावृत्तम्। ५

कटि-तट में लटकनेवाला, तीक्ष्णधार से युक्त, प्रकाश से जाज्व-ल्यमान, यह साधारण खड्ग नहीं है, अपितु हे अम्ब! पापात्माजनों से संसार को रहित करने के लिए अनन्तमूर्तिवाली, स्वयं खड्गरूप में परिणत तुम्हारा यह अवतार है। ५

यह मेरे लिए जीवन भर शक्तिप्रदायक हो। (सिर से प्रणाम कर धारण करते हैं)

सामन्त—यह महाराज का महान् अनुग्रह है।

मन्त्री—देव, इस खड्ग से सनाथ (विभूपित) होने के कारण आपका विजयध्वज अवाधगति में सर्वत्र फहरेगा; यह मेरा विश्वास है।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) आबाजी वीर द्वार पर पहुँच गये हैं।

शिवराज—शीघ्र उन्हें उपस्थित करो।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा। (कहकर चला जाता है)

(ततः प्रविशति कल्याणप्रान्ताधिपस्नुषया सहित आबाजीः)

आबाजीः—वर्धतां देवः कल्याणविजयेन। देवाधीनाः सन्ति तत्र बन्दीकृतस्य तत्प्रान्ताधिपस्य प्राणाः।

शिवराजः—सद्यस्तं कारागृहाद्विमुच्य यथार्होपचारैश्च संभाव्य विसर्जय।

आबाजीः—यद्देव आज्ञापयति। अपि च महाराजायोपायनीकर्तुमानीतमेतदलोकसाधारणं स्त्रीरत्नम्। तत्स्वीकृत्यानुगृह्णात्विमं दासजनम्।

शिवराजः—(सरोषम्) अरे ! किमिदं त्वयाऽनार्यमनुष्ठितम्।
तपनकुलभवस्य धर्मवृत्तेरपि परदाररतिर्विभाव्यते किम्।
विषमुपगतोऽपि राजहंसः; किमु बकवृत्तिमुपाश्रयेत्कदाचित् ।।६

(उसके पश्चात् कल्याणप्रान्त के अधिपति की पुत्रवधू-सहित आबाजी प्रवेश करते हैं)

आबाजी—कल्याण-विजय से आपकी वृद्धि हो। कल्याणप्रान्ताधिपतिजी बन्दीगृह में हैं, उनके प्राण आपके अधीन हैं।

शिवराज—उन्हें तुरन्त कारागार से बाहर कर, यथोचित सम्मान के साथ छोड़ दो।

आबाजी— जैसी देव की आज्ञा। मैं महाराज को भेंट करने के लिए एक अलौकिक स्त्रीरत्न लाया हूँ। उसे स्वीकार कर इस दास को अनुगृहीत करें।

शिवराज—(क्रोध से) अरे यह तुमने अत्यन्त अनुचित किया।
क्या सूर्यकुल में उत्पन्न व्यक्ति जो सदा धर्माचरण में प्रवृत्त रहता है, कभी परस्त्री में प्रवृत्त होगा ? क्या राजहंस विषम परिस्थिति आने पर भी बगुले की वृत्ति का आश्रय कभी ले सकता है ? ६

(मन्त्रिणं प्रति) तद्‌द्‌घुष्यतां तारस्वरेणास्मद्धर्मराज्ये यच्छिवराजस्य तद्‌भृत्यानां च दुहितृनिर्विशेषाः परस्त्रियः इति ।

मन्त्री—यथाज्ञापयति महाराजः । (इति पत्रं निवेशयति)

आबाजीः—प्रसीदतु देवः । साम्प्रतं राजकुलसाधरणोऽयमुपचार इति कृत्वा मयाऽत्र प्रवृत्तम् । तदनुकम्पनीयोऽयं दासजनः ।

शिवराजः—तव विक्रमेण परितुष्टोऽहमद्य त्वां कल्याणप्रान्ताधिपत्ये नियुनज्मि । तन्न्यायेन प्रजाः पालयंस्तत्रास्माकं धर्मचक्रं प्रवर्तय ।

आबाजीः—यथाज्ञापयति देवः । (इति प्रान्ताधिपस्नुषया सह निष्क्रान्तः)

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । सप्तशतं गान्धारसैनिका महाराजस्य विजययशोभिः समाकृष्टा बीजापुरनरेशमपहाय महाराजाश्रयमन्विच्छन्ति । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

(मन्त्री से) तीव्रध्वनि में घोषणा करो कि हमारे धर्मराज्य में शिवराज तथा उसके सेवक दूसरों की स्त्रियों को अपनी कन्या के समान समझते हैं ।

मन्त्री – महाराज की जो आज्ञा ।

आबाजी–देव प्रसन्न हों । मैं राजकुल में प्रचलित साधारण परम्परा के अनुसार इसे यहाँ लाया हूँ । अतः इस दास पर कृपा करें ।

शिवराज—तुम्हारे विक्रम से सन्तुष्ट होकर हम तुमको कल्याण प्रान्त का अधिपति नियुक्त करते हैं । इसलिए न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए हमारे धर्मराज की स्थापना करो ।

आबाजी—देव जैसी आज्ञा दें । (प्रान्ताधिपति की बहू के साथ जाता है ।)

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव । महाराज आपकी यशस्वी विजयों से आकर्षित होकर, सात सौ गान्धार सैनिकों ने बीजापुर नरेश को त्याग दिया है और वे महाराज का आश्रय चाहते हैं । कृपया निर्णय करें ।

शिवराजः—मंत्रिन् ! कथमेते विश्वसनीयाः ।

प्रत्यर्थिनः—परिजनेऽतितरां विनीते, स्त्रैणे मृषोक्तिपरमे विषयप्रसक्ते ।

धर्मध्वजे द्विषति हीनकुलोद्भवे च, विश्वस्य नाशमुपयाति पुरन्दरोऽपि ॥७

मन्त्री-महाराज ! मन्त्राधिकारिनियोगपरोऽयं परामर्शः । सैनिकानां तु नास्ति कश्चन स्वतंत्रोऽधिकारः । तन्नोचितोऽत्र प्रतिषेधः । अथ चैते परधर्मिण इति कृत्वाऽपि न युक्तः प्रतिषेधः । यतः—

विभिन्नधर्मा नृपतिर्निजाः प्रजाः समत्वमास्थाय सदैव पालयेत् ।

स्वधर्मनिर्बन्धपरस्तु हेलया, प्रजाविरोधात् प्रबलोऽपि हीयते ॥८

शिवराजः—सत्यं समदृष्ट्यधीनैव साम्राज्यप्रतिष्ठा । (द्वारपालं प्रति) तदुच्यतां मद्वचनात्सेनापतिर्यथावदेतेषां नियोगाय ।

प्रत्यर्थिन इति । प्रत्यर्थिनो रिपोः परिजने भृत्यवर्गेऽतितरां विनीते नम्रे स्त्रैणे स्त्रीजिते मृषाऽनृतोक्तिर्वाक् परमा यस्य तस्मिन् विषयेषु प्रसक्ते इन्द्रियारामे इत्यर्थः धर्मध्वजे दाम्भिके द्विषति रिपौ हीनकुले उद्भवो जन्म यस्य तस्मिंश्च विश्वस्य पुरन्दर इन्द्रोऽपि नाशमुपयाति । वसन्ततिलकावृत्तम् । ७

शिवराज—मन्त्रिन्, इन पर विश्वास कैसे किया जाय ?

शत्रु के परिजन (भृत्यवर्ग) के प्रति अत्यन्त विनीत, स्त्रैण, असत्य भाषण, विषयों में आसक्त, पाखण्डी, शत्रु और निम्नकुलोद्भूत जन में विश्वास करने पर इन्द्र तक सर्वनाश को प्राप्त हो सकता है । ७

मन्त्री—मन्त्रियों के साथ बैठकर हम इस पर विचार करेंगे । सैनिकों का तो कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है । संप्रति उनकी प्रार्थना अस्वीकार करना अनुचित है । उन्हें परधर्मी समझकर भी प्रतिषेध करना ठीक नहीं है । क्योंकि—

राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा का पालन विभिन्न धर्मों का ध्यान रखते हुए समानभाव से करे । स्वधर्म की श्रेष्ठता का दुराग्रही प्रवल भी राजा, प्रजा के विरोध के कारण नष्ट हो जाता है । ८

शिवराज —सत्य ही है, समानभाव की ही बुद्धि से साम्राज्य की प्रतिष्ठा होती है । (द्वारपाल से) सेनापति को मेरा आदेश सुनाओ कि गुणानुसार सबका उपयोग सेना में करें ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—मन्त्रिन् ! नास्ति पर्याप्तं केवलं पदातिदलं प्रबला-रातिनिग्रहाय । तदस्माभिः शीघ्रं सादिदलमप्युपकल्पनीयम् । .

मन्त्री—देव ! नेताजीवीराधिष्ठितं सादिदलमचिरेणैव भविष्यति रणावतारक्षमम् । तद्राजमाचीतो यदाऽसौ प्रत्यागच्छेत्तदाऽस्मिन्नेव कार्ये नियोजनीयः ।

शिवराजः—सर्वथाऽभिनन्द्यते तवाध्यवसायः ।

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । एषः राजमाचीतः प्रत्यागतो नेताजीवीरो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा (इति निष्क्रान्तः)

नेताजीः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कृषीवलच्छद्मनान्तः प्रविष्टेन

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है ।)

शिवराज—मंत्रिन्, प्रबल शत्रु के दमन के लिए केवल पैदल सेना पर्याप्त नहीं है । इसलिए शीघ्र हमें घुड़सवार सैन्य भी सङ्गठित करना चाहिए ।

मंत्री—देव, वीरवर नेताजी के नेतृत्व में शीघ्र ही घुड़सवार सेना रणभूमि में उतरने के लिए समर्थ होगी । अतएव जैसे ही वह राजमाची से वापस हों उन्हें इसी कार्य के लिए नियुक्त कर दिया जाय ।

शिवराज—तुम्हारा परिश्रम सर्वथा प्रशंसनीय है ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो देव । राजमाची से लौटकर नेताजी द्वार पर स्थित हैं ।

शिवराज—ले आओ उन्हें ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है)

नेताजी—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । अर्द्धरात्रि में मेरे

गूढचरेण निशीथेऽधः प्रसारितां रज्जुमवलम्ब्य प्राकारमधिरूढैरस्मत्सैनिक-गणैर्निहता राजमाच्युपरोधकारिणो यवनसैनिकाः ।

शिवराज :—वीर ! प्रशंसनीयं खलु तवैतत्साहसविक्रान्तम् । अपि परितोष्यते यथार्होपचारेण त्वया बन्दीकृतो यवनेशश्यालः ।

नेताजीः—अथ किम् । को नु खलु महाराजशासनमतिक्रमितुं प्रभवति देव ! तत्र निरुद्धाः सन्त्यन्येऽप्येतद्युद्धगृहीता यवनसैनिकाः ।

शिवराज :—मन्त्रिन् ! आदिश राजमाच्यधिकृतं तान् विसर्जयितुम् ।

मन्त्री—यदाज्ञापयति देवः (इति पत्रे निवेशयति)

शिवराजः—वीर ! प्रत्यासन्न एवापरः संग्रामः । तत्संनाहय सादि-निवहान् ।

नेताजी :—यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः)

गुप्तचर ने किसान के वेष में पहुंचकर रस्सी लटका दिया जिसके सहारे हमारे सैनिकों ने राजमाची में प्रवेश कर दुर्ग के अवरोधकयवन-सैनिकों को मार डाला ।

शिवराज—वीर तुम्हारा यह साहस और शौर्य प्रशंसनीय है । क्या बीजापुर नरेश का साला, जो तुम्हारा बन्दी है, व्यवहार से सन्तुष्ट है ।

नेताजी—जी, हाँ । किसमें साहस है, जो महाराज के शासन की अवहेलना करे । देव, अन्य भी तो युद्ध के बन्दी यवन सैनिक हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, राजमाची के रक्षक को उन्हें मुक्त करने का आदेश करो ।

मन्त्री—जैसी देव की आज्ञा (कागज पर लिखता है ।)

शिवराज—वीर, दूसरा संग्राम भी सन्निकट है । इसलिये यह घुड़-सवार सेना तैयार कर लो ।

नेताजी—जैसी देव की आज्ञा । (चला जाता है)

चरः—(प्रविश्य) देवस्य स्वातन्त्र्यनिष्ठया संरब्धेन दुरात्मना वीजापुराधीशेन कारागारे निरुद्धास्तातपादाः। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—(सरोषम्) . अरे दुर्मदान्ध ! अपि सन्निष्ठया विहितायास्ते सपर्याया ईदृशः. परिणामः। अथवा कृतोपकारेभ्य एव द्रुह्यन्ति दुरात्मानः।

विहाय कान्तासुतबन्धुवर्गान् , कुलप्रतिष्ठामथ जीवितस्पृहाम् ।
हन्त्येकभक्त्याऽपि निषेवितोऽधमः पर्याप्तकामः स्वयमेव सेवकम् ॥९

मन्त्री—सर्वत्रात्मनाश एवाधमशुश्रूषाया पारितोषिकम् ।

शिवराजः—मंत्रिन् ! कथमपि रक्षणीयाः पितृचरणाः । यतः—

राज्ञः प्रजायाः परिपालनं यथा. भृत्यस्य भर्तुर्हितसाधनं च ।
कुलस्त्रियः पत्युरथानुवर्तनं, तथा सुतस्यास्ति गुरोरुपासनम् ॥१०

चर—(प्रवेशकर) देव के हृदय में स्वातंत्र्य-निष्ठा हो जाने के कारण दुरात्मा वीजापुर नरेश ने आपके पिताजी को कारागार में छोड़ दिया है। (चला जाता है)

शिवराज—(क्रोध से) दुर्मदान्ध, क्या निष्ठा पूर्वक की गई तुम्हारी सेवा का यही परिणाम है ? अथवा उपकार करनेवाले से ही दुरात्मा पुरुष द्रोह करते हैं।

स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धवों, कुल-मर्यादा और प्राणों तक का मोह त्याग कर सेवा करनेवाले सेवक को भी अधम व्यक्ति अपना कार्य पूर्ण हो जाने पर मार डालते हैं। ९

मन्त्री—अधम व्यक्ति की सेवा का पुरस्कार सर्वत्र आत्मनाश ही है।

शिवराज—मंत्रिन्, पितृचरण की किसी भी प्रकार रक्षा होनी चाहिए। क्योंकि—

जैसे राजा द्वारा प्रजा का पालन करना परम कर्त्तव्य हैं, सेवक का कर्त्तव्य स्वामी का हित साधन करना, कुलीन स्त्री का कर्त्तव्य पति की आज्ञा मानना है उसी तरह पुत्र का कर्त्तव्य है गुरु (पिता) की उपासना करना। १०

मन्त्री—देव ! अत्र समामनन्ति नयशास्त्रकोविदाः । यत्—

सन्धानं सत्यसन्धे नयगुणविहितं विग्रहो हीनसत्त्वे,
यानं चान्तर्विपन्ने गिरिगहनगते चासनं दुर्गसंस्थे ।
द्वैधं व्यूहाप्रधर्ष्ये कुटिलनयरते शक्तियोगावलिप्ते,
प्रत्यर्थिन्याशु कार्यः प्रबलनरपतेः संश्रयः श्रेयसे नः ॥११

तदेतद्विपत्संतरणार्थं दिल्लीपतिरेव समाश्रयणीयः । यतः—

सदाश्रयोऽयं विदुषां कलावतां निजे परे चापि समानभावः ।
निरस्तपापः स्वयमप्रमत्तः, प्रजाः प्रजाः स्वा इव शास्त्यधीशः ॥१२

संधानमिति—सत्या संधा प्रतिज्ञा यस्य तस्मिन् नयस्य नीतिशास्त्रस्य गुणेषु संध्यादिगुणेषु विहितं संधानं संधिः हीनं सत्वं बलं यस्य तस्मिन् विग्रहः, अन्तः प्रकृतिषु विपन्ने विपदाभिभूते यानं, गिरौ गहने वने च गते दुर्गसंस्थे चासनं व्यूहैरप्रधर्ष्येऽनाक्रम्य द्वैधं, कुटिलो यो नयस्तस्मिन् रते शक्तीनां प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तीनां योगेनावलिप्ते गर्विते प्रत्यर्थिनि रिपौ नः श्रेयसे प्रबलनरपतेः संश्रयः कार्यः । स्रग्धरावृत्तम् । ११

मंत्री—इस विषय में नीतिज्ञों का मत है कि—स्वहित की दृष्टि से सत्य-पथगामी नीतिमान् शत्रु से सन्धि, शक्तिहीन से युद्ध-घोषणा जिसकी शक्ति अन्दर ही अन्दर क्षीण हो उस पर आक्रमण, पर्वत, जङ्गल अथवा दुर्ग में स्थित शत्रु से युद्ध-विराम, और उस शत्रु के साथ दुहरी चाल चलनी चाहिए, जो सैन्य-व्यूह के कारण अजेय हो रहा हो एवं कुटिल नीति और तीनों शक्तियों से युक्त अभिमानी, तथा अजेय शत्रु के लिए प्रबल राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । ११

अतः इस विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए हमें दिल्ली सम्राट् का आश्रय लेना चाहिए क्योंकि —

वह विद्वानों, कलाकारों का आश्रयदाता, अपने मित्र और शत्रु दोनों के प्रति समानभाव रखनेवाला, पाप-कर्म से रहित, अपने कर्त्तव्य में रत और प्रजा का औरस सन्तान की भाँति पालन करनेवाला है । १२

शिवराजः—ममाप्येतदेवाभिप्रेतम् । यतः—

दिल्लीशोपाश्रयेणैव वशं नेयोऽयमुद्धतः ।
दुर्दान्तस्याधमस्यास्य नास्त्यन्या दमनक्रिया ॥१३

तत्प्रयुज्यतां कोऽपि कार्यक्षमो निसृष्टार्थो दूतोऽस्मदभीष्टं संपादयितुम् ।

मन्त्री—गच्छतु रघुनाथपन्त एतत्कार्यसंसिद्धये ।

शिवराज :—स्थान एवास्य नयविचक्षणस्य पण्डितवरस्य नियोगः । कः कोऽत्र भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराज :—पण्डितवरं द्रष्टुमिच्छामि ।

द्वारपाल :—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—विलिख्यतां तावद्विज्ञापनपत्रम् ।

मन्त्री—तथा । (इति पत्रं लिखति)

शिवराज—मेरा भी यह विचार है । क्योंकि—

इस उद्धतशत्रु को दिल्लीश्वर की सहायता से ही वश में करना चाहिए, दुर्दान्त और अधम के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है । १३

अतः हमारे अभीष्ट के संपादनार्थ किसी कुशल दूत को नियुक्त करो ।

मंत्री—इस कार्य की सिद्धि के लिए रघुनाथपन्त जायें ।

शिवराज—नीतिनिपुण पण्डितवर ही इसके लिए उपयुक्त हैं । ओ ! कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) आज्ञा देव ।

शिवराज—पण्डितवर के दर्शन की इच्छा है ।

द्वारपाल—जो आज्ञा ।(चला जाता है)

शिवराज—तब तक विज्ञापनपत्र लिखें ।

मंत्री—ठीक है । (पत्र लिखता है)

शिवराज :—(लेख्यमादिशति)

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वरसाम्राज्यश्रीनिकेतनसार्वभौममोगलेशचरणरचिताञ्जलिः शिवराजः सप्रश्रयं प्रार्थयते यत्सार्वभौमस्य भृत्यवर्गंप्रविविक्षुरयं जनो यथार्हंनियोगेनानुग्राह्य इति। अपि च कृतघ्नेन बीजापुरनरेशेन विनाऽपराधं कारागृहे निरुद्धानां निजतातपादानां मुक्तिसंपादनेनानुग्रहान्तरमभिलषत्ययं सार्वभौमभृत्यः। वितरतु कृपापारावारे श्रीसार्वभौमेऽनन्तयशः समृद्धिवैभवं विश्वनियन्तेत्याशास्ते च इति।

मन्त्री—देव ! लिखितं मया यथादिष्टम्।

पण्डितवरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः।

शिवराज :—आदायैतद्विज्ञापनपत्रं प्रतिष्ठस्व तावद्दिल्लीनगरम्। तत्र च सार्वभौममनुकूलं विधाय सर्वात्मना संपादयास्मत्तातपादानां विमुक्तिम्। (इति स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय पत्रमर्पयति)

शिवराज—(पत्र लिखाते हैं) श्रीमद्भारतराज-कुलाधीश्वर साम्राज्य श्रीनिकेतन सार्वभौम मुगल सम्राट के चरणों में अंजलिबद्ध यह शिवराज सादर निवेदन करता है कि सार्वभौम सम्राट् के यहाँ अपनी योग्यतानुसार सेवक के रूप में प्रवेश चाहता है। और कृतघ्न बीजापुराधीश द्वारा निरपराध कारागार में बन्द अपने तातचरण के मुक्ति-संपादन-कार्य के लिए भी अनुग्रह की यह सार्वभौमभृत्य इच्छा करता है। विश्वनियन्ता परमात्मा कृपासागर श्रीसार्वभौम सम्राट को अनन्तकीर्ति एवं समृद्धि पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करे-इस भृत्य की यह कामना है।

मंत्री—देव, आपके आदेशानुसार मैंने लिख दिया।

पण्डितवर—(प्रवेशकर) विजय हो देव।

शिवराज—यह विज्ञापनपत्र लेकर दिल्ली नगर जायँ। और वहाँ सर्वतोभावेन अपने प्रयास से सार्वभौम सम्राट् को अपने अनुकूल करके तातचरण को मुक्त करने का कार्य सम्पन्न करें। (अपने नाम की मुद्रा से अंकित पत्र देता है)

पण्डितवर :—(पत्रमादाय) यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—कः कोऽत्र भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराज :—अन्तर्गृहमार्गमादेशय ।

द्वारपाल :—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः) एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता राजमाता राज्ञी च)

शिवराज :—(प्रविश्य) मातः ! अभिवादये ।

राजमाता—वत्स ! चिरंजीव । अप्यस्ति कश्चिद्विशेषः ।

शिवराज :—कृतघ्नेन बीजापुरेशेन बन्दीकृतानां तातपादानां विमुक्तये-कर्तव्यतयापतितो मोगलेशसंश्रयः ।

राजमाता—सुतन्त्रितोऽयं मन्त्रनिर्णयः । भविष्यत्यनेन तवाभीष्टसिद्धिः । यतः—

पण्डितवर—(पत्र लेकर) जैसा देव आदेश करें । (चला जाता है)

शिवराज—ओ ! कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेशकर) आज्ञा, देव ।

शिवराज—अन्तर्गृह का मार्ग दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, देव इधर से । (दोनों चलने का नाटक करते हैं) यह अन्तर्गृह का द्वार है, प्रवेश करें । (चला जाता है)

(उसके बाद अन्तर्गृह में स्थित राजमाता और राज्ञी का प्रवेश)

शिवराज—(प्रवेशकर) माता ! अभिवादन करता हूं ।

राजमाता—चिरंजीव पुत्र । कोई विशेष समाचार ?

शिवराज—कृतघ्न बीजापुरनरेश द्वारा बन्दी किये गये तातचरण की मुक्ति के लिए मुगलसम्राट् का सहारा ले रहा हूं ।

राजमाता—यह उचित निर्णय हुआ । इस प्रकार तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । क्योंकि —

न सर्वदा विक्रमशालिनोऽप्यलं, भवन्त्यरातीन् सहसा प्रर्धावितुम्।
ऊर्जस्विनां साहसमस्ति विप्लुते, नयप्रयोगेऽगतिका गतिर्ध्रुवम् ॥१४

तत्प्रेषय पण्डितवरमेनमर्थं संपादयितुम् ।

शिवराजः—अम्ब ! तथैव मया प्रकल्पितम् । एवं त्वयाऽनुमोदितस्य नितरां मोदते मेऽन्तरात्मा ।

राजमाता—वत्स ! श्रुतं मया चारेभ्यो यत्प्राणान्तविपद आत्मान रक्षितुं धर्मान्तरमाश्रितो बजाजीवीरः पुनः स्वधर्मप्रवेष्टुमिच्छति । अस्त्यत्र प्रतिकूलोऽस्मद्बन्धुवर्गः । परन्तु साम्राज्यसंस्थापनप्रवृत्तेन त्वया कर्तव्यो वीर-संग्रहः । अतो यथाविधि परिशोधितस्यास्यात्मजाय स्वकन्यां प्रदाय संपादयास्य चिरसौहृदम् ।

शिवराजः—शिरसि क्रियते तवादेशः ।

विक्रमशीलता ही सदा शत्रुओं को आक्रान्त करने के लिए पर्याप्त नहीं, शक्तिशाली शत्रु पर विजय पाने में जब नीति प्रयोग भी असफल हो जाय तो साहस ही अन्तिम साधन होता है । १४

तो पण्डितवर को यह कार्य संपादित करने के लिए भेजो ।

शिवराज—अम्ब, यही व्यवस्था मैंने की है । इस प्रकार तुम्हारे अनुमोदन से मेरी अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न है ।

राजमाता—वत्स, भृत्यों से सुना है कि प्राणान्तक विपत्ति से रक्षार्थ धर्म-परिवर्तन करनेवाला बजाजीराव पुनः स्वधर्म में प्रवेश करना चाहता है । हमारे बन्धुवर्ग इसके प्रतिकूल हैं । किन्तु साम्राज्य संस्थापना में प्रयत्नशील तुमको वीरों को अपने पक्ष में लाना चाहिए, इसलिए शुद्धि क्रिया के पश्चात् तुम उसके पुत्र को अपनी कन्या प्रदान करके घनिष्ठता प्राप्त करो ।

शिवराज—आपका आदेश स्वीकार है ।

राजमाता—वत्स ! युज्यस्व भूयो भूयो मङ्गलेन । अथ महेश्वराराधनाय साधयामि देवगृहम् । (इति निष्क्रान्ता)

राज्ञी – आर्यपुत्र ! अद्य खलु ।

लोकप्रकाशनमरातितमोऽपहारि, संतर्पणं नयनमानसयोर्वपुस्ते ।
एतन्नवोपचितयौवनराज्यलक्ष्म्या, तेजोद्वयस्य युगपत्सुषमां दधाति ॥१५

शिवराजः–देवि ! त्वमेवासि मम सकलमङ्गलानामेकायनम् । यत्त्वम्
प्रोत्साहनेन समराङ्गणतत्परस्य प्रत्यागतस्य च पराक्रमणानुयोगैः ।
उद्वेजितस्य नयमार्गविकल्पनैश्च श्रान्तस्य नर्मवचसा तनुषे सुखं मे ॥१६

राज्ञी—आर्यपुत्र ! धर्म एवैष सहधर्मचारिणीनां क्षत्राङ्गनानाम् ।

लोकेति । लोकानां प्रकाशनमरातय एव तमस्तदपहरतीति नयनयोर्मनसस्य च संतर्पणं ते तवेतद्वपुर्नवमुपचितं समृद्धं यद्यौवनं च राज्यं च तयोर्लक्ष्म्या कान्त्या तेजोद्वयस्य सूर्याचन्द्रमसोर्युगपत्समकालमेव सुषमां परमां शोभां दधाति धारयति । वसन्ततिलकावृत्तम् । अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । १५

प्रोत्साहनेनेति । समरांगणतत्परस्य रणप्रयाणाभिमुखस्य प्रोत्साहनेन, प्रत्यागतस्य पराक्रमणानां विक्रमाणामनुयोगैः प्रश्नैः उद्वेजितस्य च नयस्य मार्गाणां प्रयोगाणां विकल्पनैर्नानाकल्पनाभिः श्रान्तस्य च नर्मयुक्तं यद् वचस्तेन मे सुखं तनुषे विस्तारयसि । वसन्ततिलकावृत्तम् । १६

राजमाता—वत्स, साफल्य और मंगल के पात्र बनो । अब महेश्वर की अर्चना के लिए देवमन्दिर में जा रही हूं । (चली जाती है)

राज्ञी–आर्यपुत्र, आज—तो संसार को प्रकाशित करनेवाला, शत्रुरूपी अन्धकार को दूर करनेवाला नवयौवन तथा राजलक्ष्मी से युक्त यह आपका शरीर दोनों तेजों – सूर्य और चन्द्रमा की शोभा एक साथ धारण कर रहा है । १५

शिवराज—देवि, तुम्हीं हमारे समस्त मंगल के लिए केन्द्र स्थान हो । क्योंकि—तुम मुझे सदा सुख प्रदान करती रहती हो—समर के लिए प्रस्थान काल में प्रोत्साहित करके वापस आने पर पराक्रम संबंधी विविध प्रश्न पूछकर, उद्विग्न रहने पर विभिन्न नीति-विषयक वार्ता द्वारा एवं जब श्रान्त रहता हूं तो मधुर वचन बोलकर सुख पहुंचाती हो । १६

राज्ञी—आर्यपुत्र, सहधर्मिणी क्षत्रिय ललना का धर्म यही है ।

निसर्गत एव ।

तव व्रते मे हृदयं प्रतिष्ठितं, मनश्च मे त्वन्मनसैकतां गतम् ।
त्वयि प्रसन्ने भवति प्रसन्नं, समाकुलं चाकुलिते त्वयि प्रिय ! ॥१७

शिवराजः—(स्वगतम्) अहो नु खलु धन्योऽस्मि । (प्रकाशम्) तव सुधास्यन्दिवचोभिराप्यायितोऽहं पुनः पुनर्नवतामुपेत्यारातीनभिभवितुमुत्सहे ।

राज्ञी–संप्रत्यधर्मप्रायेषु राजकुलेषु धर्मवृत्तेस्तव सुखोपगमैव विजयश्रीः ।

शिवराज;—(शतघ्नीस्वनमाकर्ण्य) अहो जातः खलु सेनानिरीक्षणसमयः । यावत्साधयामि ।

राज्ञी—अहमपि तावच्छिवाराधनाय देवगृहमुपैमि । (इति निष्क्रान्तौ)

समाप्तोऽयं राज्यव्यवस्थितिनामा

तृतीयोऽङ्कः ।

स्वभाव से ही ।

मेरा हृदय तुम्हारे संकल्प, मस्तिष्क तुम्हारे मन के साथ एकाकार रहता है। हे प्रिय, तुम्हारे प्रसन्न रहने पर प्रसन्नता तथा व्याकुल रहने पर मुझे आकुलता होती है। १७

शिवराज—(स्वगत) वस्तुतः भाग्यशाली हूँ मैं। (प्रकट) तुम्हारे सुधा के समान मधुरवचनों से आनन्दित मैं शत्रुओं को आक्रान्त करने की नवस्फूर्ति प्राप्त कर उत्साहित होता हूँ।

राज्ञी—राजकुलों के प्रायः अधर्मरत होते हुए धर्मवृत्तिवाले तुम्हारे लिए विजयश्री सहज प्राप्त होगी।

शिवराज—(शतघ्नी की ध्वनि सुनकर) सेना निरीक्षण का समय हो गया। अब मैं चलूं।

राज्ञी—मैं भी शिवाराधन के लिए देवमन्दिर में जा रही हूँ।

(दोनों चले जाते हैं)

राज्यव्यवस्थिति नामक

तृतीय अङ्क समाप्त ।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथमः—भद्र ! किमेवं प्रक्रान्तेऽपि महोत्सवे नियोगशून्य इवात्र परिभ्रमसि ।

द्वितीयः—अये ! किं निमित्तोऽयं महोत्सवः ।

प्रथमः—अये ! किं न जानास्यद्य खलु भवानीप्रतिष्ठायाः परिसमाप्तिदिनमिति ।

द्वितीयः—भद्र ! राजकार्यार्थं देशान्तरप्रस्थितोऽहमद्यैवात्र संप्राप्तः ।

प्रथमः—दिष्ट्यैतत्प्रतिष्ठामहोत्सवार्थं समुपस्थितस्य श्रीरामदासस्वामिनः सान्निध्येन पवित्रीकृत एष प्रतापगढ्दुर्गः । भवितोऽद्य देवस्यानेन महात्मना समागमः । अपि नामास्मिंस्तपोनिधौ भक्तिप्रवणो

चौथा अङ्क

(दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम—भद्र. महोत्सव के प्रारम्भ हो जाने पर भी यह तुम घूम क्यों रहे हो, जैसे काम न हो ।

द्वितीय—ओह, यह महोत्सव कैसा ?

प्रथम—ओह, क्या नहीं जानते कि भवानी प्रतिष्ठा का आज समाप्ति दिन है ।

द्वितीय—भद्र, राजकार्य से देशान्तर गया था, आज ही यहाँ आया ।

प्रथम—भाग्यवशात् प्रतिष्ठा-महोत्सव के निमित्त आये हुए स्वामी रामदास के सानिध्य से यह दुर्ग प्रतापगड पवित्र हुआ । आज महाराज से इनकी भेंट होगी । मेरी इच्छा है कि देव के हृदय में इनके

भवेदस्मद्द्वेय: : यतः स एवास्ति समर्थो देवस्य विघ्नशतान्यपि विदारयितुम् ।

द्वितीयः —अप्यस्ति कश्चित्प्रतिकूलप्रसङ्गावकाशो येनैवं ब्रवीषि ।

प्रथमः—अथ किम् । कारागृहाद्विनिर्मुक्तस्य शाहजीमहाराजस्य पुनः कर्णाटाधिकारपदावाप्त्यनन्तरं बीजापुरेशस्य पुरतो देवं बन्दीकर्तुं प्रतिजज्ञेऽसूयाविष्टो धूर्त्तः शामराजः। एतत्प्रतिज्ञासिद्धये च जावली-प्रान्ताधिपसाहाय्यमपेक्षमाणः तमेवाश्रित्यावर्तत । तत्र च निवसता शामराजहतकेन सह्याद्रिवनं पर्यटतो देवस्य वधार्थं नियुक्तान् मारात्मकान् किराताग्निहत्य रक्षितो देवस्तत्राकस्मादुपस्थितेन नेताजीवीरेण ।

द्वितीयः—एवं मिथो विद्वेषकलुषितेष्वस्मत्क्षत्रवीरेषु कुतः स्वातन्त्र्याधिगमो भारतीयानाम् ।

प्रति भक्ति भावना प्रगाढ़ हो । क्योंकि वही देव के सैकड़ों विघ्नों को दूर करने में समर्थ हैं ।

द्वितीय—क्या कोई प्रतिकूल घटना सम्भावित है जो ऐसा कहते हो।

प्रथम—हाँ । शाहजी महाराज के कारागार से मुक्त होकर पुनः कर्नाटक के अधिकार-पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् ईर्ष्यावश धूर्त्त शामराज ने बीजापुराधीश के समक्ष देव को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिए साहाय्य की अपेक्षा रखकर उसने जावली के शासक का आश्रय ग्रहण किया । उसके वहाँ निवास करते हुए शामराज द्वारा देव, के वध-हेतु प्रेषित जंगल में घूमते हुए उन वधिक किरातों के अचानक उपस्थित होकर नेताजी द्वारा मारे जाने पर देव की रक्षा हुई ।

द्वितीय—इस प्रकार हम, क्षत्रियों के परस्पर की विद्वेषभावना से कलुषित हृदय होने से भारतीयों के लिए स्वतन्त्रता की प्राप्ति कहाँ ।

प्रथमः—ततश्च सुखं प्रत्यागतेन देवेन संदिष्टं तस्य क्षत्राधमस्य जावलीप्रान्ताधिपस्य यद्—

विक्रीय देशकुलधर्मयशोऽभिमानं; म्लेच्छाधिपाय न मनागपि लज्जसे त्वम् ।
आक्रम्य लुब्धकगणैरपि पाशबद्धः; किं वा श्ववृत्तिमभिनन्दति सिंहशावः ॥१

इति। परन्तु प्रत्यासन्नमरणेन तेन सर्वथा प्रत्याक्षिप्तं देवस्य मन्त्रितम् । ततश्च समिद्धमन्युना देवेनासौ क्षत्रकुलापसदः क्षिप्रमेव यमालयं प्रेषितः ।

द्वितीयः—धन्यं हि नयपाटवं देवस्य। सद्य एव वध्यो विषोल्वणः कृष्णसर्पः ।

प्रथमः—अथ रोगाक्रान्तं मोगलसाम्राज्यमुपश्रुत्य दिल्लीनगरं प्रयाते तद्युवराजे जावलीप्रान्ताधिपवधसंजातामर्षेण बीजापुरेशेन देवं

विक्रीयेति। देशश्च कुलं च धर्मश्च यशश्च तेषामभिमानं म्लेच्छाधिपाय वीजापुरेशाय विक्रीय तस्य दास्यं स्वीकृत्येत्यर्थः। मनागपि ईषदपि त्वं न लज्जसे। लुब्धकानां व्याधानां गणैः समूहैः आक्रम्य पाशवद्धोऽपि सिंहशावः किं वा श्ववृत्तिमभिनन्दति नाभिनन्दति न स्वीकुरुते इत्यर्थः। वसन्ततिलकावृत्तम्। दृष्टान्तालङ्कारः। १

प्रथम—उसके पश्चात् सानन्द वापस आकर देव ने क्षत्रिय अधम जावलीप्रान्ताधिप को सन्देश दिया कि—

यवनराज के हाथों अपना अभिमान धर्म, यश और कुल-मर्यादा को वेचकर क्या तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती, वधिकों द्वारा पाशवद्ध होने पर क्या सिंह-शावक कभी कुत्ते की वृत्ति स्वीकार करता है। १

परन्तु मृत्यु को निकट जानकर भी उसने देव की मन्त्रणा को नहीं माना और उसके पश्चात् उससे क्रुद्ध होकर देव ने उस क्षत्रियद्रोही दुष्ट को तुरन्त यमपुर को भेज दिया।

द्वितीय—देव की यह राजनीतिक कुशलता प्रशंसनीय है। शीघ्र ही यह विषैला कृष्णसर्प भी मारा जाना चाहिए।

प्रथम—मुगल साम्राट को रोगग्रस्त जानकर उसके युवराज के दिल्ली नगर प्रस्थित होने के वाद, जावली प्रान्त के अधिकारी के वध

निग्रहीतुमाज्ञप्तः स्वसेनानायकः । तदचिरेण भविष्यति पुनरपि युद्धारम्भः ।

द्वितीयः—अप्यस्ति विदितमेतद्देवस्य ।

प्रथमः—चारचक्षुषो देवस्य नास्ति किमप्यगोचरम् (पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रतिष्ठाकार्यं प्रस्थितो देवो राजमन्दिरम् ।

द्वितीयः— भद्र ! अहं तावद्देशान्तरोदन्तमावेदयितुमुपैमि मन्त्रिसदनम् ।

प्रथमः—अहमपि स्वनियोगपरिपालनाय प्राप्नोमि राजमन्दिरम् । (इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भकः ।

से क्रुद्ध बीजापुराधीश ने अपने सेनापति को देव को वन्दी वनाने का आदेश दिया है । इससे शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो जायगा ।

द्वितीय—क्या यह देव को मालूम है ।

प्रथम—गुप्तचरों द्वारा समस्त सूचनाएँ प्राप्त करनेवाले देव के लिए कुछ अज्ञात नहीं है । (सामने देखकर) प्रतिष्ठा कार्य को समाप्त करके यह देव राजमहल को जा रहे हैं ।

द्वितीय—भद्र, मैं देशान्तर के समाचार निवेदन करने के लिए मंत्री के पास जा रहा हूँ ।

प्रथम—मैं भी अपना कार्यभार पालन करने के लिए राजमहल की ओर चल रहा हूँ । (दोनों जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त ।

(ततः प्रविशति श्रीरामदासेन सह शिवराजः)

शिवराजः—(सप्रश्रयम्) दिष्ट्याद्य कृतार्थतां गमितोऽस्मि चिरप्रार्थितेन भगवत्प्रसादाधिगमेन ।

(इति पुष्पस्रजं कण्ठे समर्प्य पादयोः पतति)

श्रीरामदासः— भारतैकवीर ! उत्तिष्ठ । धर्मराज्यसंस्थापनार्थं शङ्करांशेनावतीर्णस्य तव भवतु सर्वत्राप्रतिहतो विजयः ।

शिवराजः—(उत्थाय) प्रतिगृहीताशीः । (सनिर्वेदं) भगवन् ! अथ मया यावज्जीवं किमेवमेव हिंसाप्रधानो धर्मोऽनुष्ठेयः ।

श्रीरामदासः—व्यवस्थितवर्णाश्रमेऽस्मिन् भारते वर्षे दुष्कृतां हिंसनं साधूनां च परित्राणमेव क्षत्रियस्य परो धर्मः । तन्नयमार्गमवलम्ब्योत्पथगामिनो नृपाधमांश्चोन्मूल्य प्रवर्तय तव धर्मशासनम् । न चैवं प्रवर्तमानस्य तव श्रेयः प्रतिबन्धः । यतः—

(उसके बाद श्री रामदास के साथ शिवराज का प्रवेश)

शिवराज—(विनम्रता से) चिरकाल से भगवान् के दर्शन के लिए उत्सुक मैं आज भाग्यवशात् कृतार्थ हुआ । (पुष्पमाला कण्ठ में समर्पित कर पैरों पर गिरता है) ।

श्रीरामदास—भारत के अद्वितीय वीर उठो । धर्मराज्य की स्थापना हेतु शंकर के अंश-सहित अवतरित तुम्हारी सर्वत्र विजय हो ।

शिवराज—(उठकर) अनुगृहीत हुआ । (सखेद) भगवन् ! क्या जीवन पर्यन्त मैं इसी प्रकार हिंसात्मक कार्य करता रहूँगा ।

श्रीरामदास— वर्णाश्रम की व्यवस्थित परम्परा वाले इस भारतवर्ष में क्षत्रियों का परम धर्म है कि दुष्टों का वध और साधुओं की रक्षा करें । इसलिए नीतिमार्ग का आश्रय ग्रहण करके पथभ्रष्ट अधम राजाओं का नाश करके अपना धर्मशासन स्थापित करो । इस आचरण में तुम्हें कोई धार्मिक बाधा नहीं है । क्योंकि—

लोकसंग्रहपरैर्जितात्मभिः कर्मयोगनिरतैर्नृपोत्तमैः ।

पाप्मनां प्रमथने प्रकल्पितो, धर्मतन्त्रमपि बाधते नयः ॥२

परन्तु

धर्मप्रवृत्ताः परिपन्थिनस्त्वया, साम्नैव राजन् ! स्ववशं विधेयाः ।

न धर्मगुप्ते हि नयप्रयोगाः; कदाचिदप्यर्थपरा भवन्ति ॥३

एवं धर्मनयप्रतिष्ठितेन च त्वया नानाधर्माः प्रजाः समबुद्ध्यैव पालनीयाः । यतः—

वृत्तं यथा धर्मभयेन रक्ष्यते, नृभिस्तथा नैव नरेन्द्रशासनात् ।

धर्मान् सदाचारपरानतो नृपः, प्रजाहितज्ञो नियमेन पालयेत् ॥४

एवं प्रवर्तमानस्य तव सर्वथाऽनुकूला भविष्यति जगन्नियन्त्री परदेवता ।

लोकेति । लोकानां संग्रहः हितः परं प्रधानं येषां तैः जितात्मभिः नियतेन्द्रियैः, कर्म एव योगः तस्मिन् निरतैः कर्मयोगिभिः इत्यर्थः नृपोत्तमैः पाप्मनां प्रमथने विनाशे प्रकल्पितः योजितः नयः धर्मतन्त्रं धर्मशास्त्रमपि बाधते । रथोद्धतावृत्तम् । अत्रोपदिष्टाख्यं लक्षणम् । २

उत्तम राजा जो अपनी प्रजा के कल्याणार्थ यत्नशील रहते हैं, जितेन्द्रिय और कर्मनिष्ठ हैं, दुष्कर्मों का विनाश करने के लिए नीति का प्रयोग करते हैं, ऐसे राजा धर्मतन्त्र को भी अक्रान्त कर डालते हैं । २

परन्तु हे राजन् तुम्हे अपने शत्रुओं पर विजय करना चाहिए, वे शत्रु जो धर्मनीति तथा सामशक्ति से युक्त हैं, उन पर राजनीति का प्रयोग नहीं करना चाहिए । क्योंकि कभी धर्मगुण के समक्ष राजनीति का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है । ३

इस प्रकार धर्मनीति में प्रतिष्ठित होकर तुम्हें नाना धर्मों का अनुसरण करती हुई समान बुद्धि से प्रजा का पालन करना चाहिए ।

धर्म के भय से जैसे आचरण की रक्षा होती है उसी प्रकार राज शासन से नहीं होती, मनुष्य धर्म और ईश्वर को डरता है। अतः राजा को चाहिए कि वह धर्म एवं सदाचार का ध्यान रखते हुए, प्रजा का हित हृदय में सोचकर नियमतः शासन करे । ४

इस प्रकार आचरण करने पर जगत्नियन्त्री पराशक्ति आपके अनुकूल रहेगी ।

शिवराजः—भगवन् ! तवानुग्रहेणाद्य निवृत्तं मे मोहावरणम् । नवीकृतश्च साम्राज्यसंस्थापनोत्साहः ।

श्रीरामदासः—वत्स ! तव साहाय्यार्थं प्रतिमठं मया विनीयन्ते राष्ट्रभावभाविताः शतशो युवगणाः । तदिमे—

व्यायामयोगोपचिताङ्गसत्वा, विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिताः ।
राष्ट्रैकभक्ता उपधाविशोधिता, भवन्तु ते भाविरणे सहायाः ॥५

शिवराजः—अहो. परमार्थतो भगवतैवारब्धे राष्ट्रोद्धरणोद्यमेऽहं तु निमित्तमात्रमेव । यत्सत्यं ब्रह्मसमेधितमेव क्षत्रमृध्नोति ।

श्रीरामदासः—वत्स ! यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च समीची चरतस्तत्रैव साम्राज्यश्रीर्विलसति । अतः—

ये क्षमा स्वतपसा दुरात्मनां निग्रहेऽपि च सतामनुग्रहे ।
ब्रह्मवर्चसिन आत्मयाजिनस्तान्सभाजय सदा स्वगुप्तये ॥६

व्यायामेति । व्यायामस्य योगेन अभ्यासेन उपचितं विवृद्धम् अङ्गानां सत्त्वं बलं येषां ते, विद्याश्च कलाश्च दण्डनयः राजनीतिश्च तेषु प्रतिष्ठिता कुशला इत्यर्थः, राष्ट्रैकभक्ताः उपधाभिः—धर्मार्थकाममयैः परीक्षणमुपधा-ताभिः विशोधिताः भाविनि रणे ते सहायाः भवन्तु । उपजातिवृत्तम् ।

शिवराज—भगवन्, आपके अनुग्रह से आज मेरा मोहान्धकार समाप्त हुआ और साम्राज्य स्थापना का उत्साह नया हो गया ।

श्रीरामदास—वत्स तुम्हारी सहायता के लिए मैं प्रत्येक मठ में राष्ट्रीय भावना का समावेश कर रहा हूँ । अतः ये—

व्यायाम द्वारा अपने शरीर में शक्ति एकत्र कर, विद्या, कला दण्डनीति आदि में दक्ष हो राष्ट्रभक्ति से युक्त, धर्म अर्थ में भलीभाँति परीक्षित होकर भावी समर में सहायक होंगे । ५

शिवराज—अहो, परमार्थ की भावना से वस्तुतः राष्ट्रोद्धार का कार्य आपने ही प्रारम्भ किया, मैं इसमें निमित्त मात्र हूँ । यह सत्य ही है कि ब्राह्मणों की शक्ति से युक्त होकर क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती है ।

श्रीरामदास—वत्स ! जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियों की बुद्धि एवं शक्ति का सहयोग होता है, वहीं साम्राज्य लक्ष्मी निवास करती हैं । इसलिए जो तपस्या के बल से दुरात्मा मनुष्यों का निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करने में समर्थ हैं तथा जो ब्रह्मतेज से प्रकाशमान हैं, अपनी रक्षा हेतु, सर्वदा उनका समादर करो ।

अपि च साम्राज्यसमृद्धये त्वया प्रयत्नेनानुरञ्जनीया निषाद-पञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः । यतः—

यथाऽत्र लोकव्यवहारसिद्धये, भवेत्समर्थोऽविकलेन्द्रियः पुमान् ।
तथा नृपः पञ्चजनोपसंग्रहात्, साम्राज्यसौभाग्यफलाय कल्पते ।।७

शिवराजः—भगवतो महिम्ना वशीकृतोऽयं जनोऽतः प्रभृति शिष्य-दृष्ट्याऽनुकम्पनीयः ।

श्रीरामदासः—वत्स ! न केवलं शिष्य इति त्वमसि मम प्रेमा-स्पदम् । अपितु त्वमसि मे द्वितीयं हृदयम् । त्वदधीनैवास्ति मे साध्यसिद्धिः । तन्मया सततं सावधानेनोदीक्ष्यते त्वद्विजयध्वजप्रसरः । संप्रत्यपि त्वां निर्विण्णमुपश्रुत्य संप्राप्तोऽस्म्यहं तव प्रोत्साहनार्थमेतद्-दुर्गराजम् । अथ त्वां स्वकर्मण्यभिप्रवृत्तम् वीक्ष्य प्रतिष्ठेऽहं धर्मप्रवचनाय दुर्गान्तरम् ।

और तुम्हें साम्राज्य की समृद्धि के लिए चारों वर्णों और निषादों को प्रयास करके प्रसन्न रखना चाहिए क्योंकि—

जिस प्रकार अविकलेन्द्रिय पुरुष व्यवहार की सफलता के लिए संसार में समर्थ होता है तथैव नृपति पाँचों वर्णों के संग्रह-द्वारा साम्राज्य-शक्ति के लाभ हेतु सौभाग्य की कल्पना कर सकता है । ७

शिवराज—भगवन् की महिमा से वशीभूत, इस जन पर शिष्य समझकर आप कृपा करें ।

श्रीरामदास—वत्स, तुम केवल शिष्य होने के कारण मेरे प्रिय नहीं हो बल्कि तुम मेरे दूसरे हृदय हो । मेरी सिद्धि तुम्हारे ही अधीन है । इसलिए मैं सावधानी से हमेशा तुम्हारे विजयध्वज का प्रसार देखता रहता हूं । इस समय भी निराशहृदय सुनकर तुम्हें प्रोत्साहित करने के लिए इस दुर्ग में उपस्थित हुआ हूं । अब मैं तुम्हें अपने कर्म में प्रवृत्त देखकर दूसरे दुर्ग में धर्म प्रवचन करने जा रहा हूं।

शिवराजः—भगवताऽनुग्राह्योऽयं जनो भूयो दर्शनेन ।

श्रीरामदासः—भारतैकवीर ! संपादयतु तवाभीष्टं भगवती परदेवता । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—कः कोऽत्र भोः !

द्वारपालः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

द्वारपालः—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः) एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

शिवराजः—(प्रविश्य) स्वागतं मन्त्रिवराणाम् ।

मन्त्रिणः—(उत्थाय) विजयतां महाराजः । (इति शिवराजमनुपविशन्ति)

द्वारपालः—(प्रविश्य) देवं द्रष्टुकामः कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—भगवन् इस जन को पुनर्दर्शन से अनुगृहीत करेंगे ।

श्रीरामदास – भारत के श्रेष्ठवीर ! भगवती तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करें । (चले जाते हैं)

शिवराज—कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आदेश दें ।

शिवराज—मन्त्रगृह का द्वार, दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देव (दोनों चलने का नाटक करते हैं) यह है मन्त्रगृह का द्वार, प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

शिवराज—(प्रवेश कर) मन्त्रिवर, स्वागत है ।

मन्त्रीगण—(उठकर) विजय हो महाराज । (शिवराज के बैठने के वाद वैठते हैं)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) द्वार पर कोई यवनतपस्वी देव के दर्शन के लिए आया है ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

चरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कथमपि तं सह्यमूषकं गृहीत्वा सत्वरमानयामीति बीजापुरेशसभायां प्रतिज्ञाय मार्गे च भवानीप्रतिमां खण्डशः कृत्वा द्वादशसहस्रसैनिकदलेन सह सम्प्राप्तोऽत्र पापात्मा बीजापुर-सेनानायकः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—(आकर्ण्य सरोषम्) अरे जाल्म !

अविदिततपनान्वयप्रतापः, किमिति वृथा त्वमु गल्भसे मदान्ध !
परधनपरिपुष्टमञ्जसा त्वां, महिषबलिं परिकल्पये भवान्याः ॥८

नेताजीः—(सरोषम्) सद्य एव मां तस्याततायिनो निग्रहार्थमादिशतु देवः । अद्यैवाहं—

अविदितेति । हे मदान्ध ! अविदितः तपनान्वयस्य सूर्यवंशस्य प्रतापः येन स त्वं उ इति क्रोधे किमिति किमर्थं वृथा गल्भसे । परेषां धनेन परिपुष्टं त्वां अञ्जसा क्षिप्रं भवान्याः महिषरूपो बलिः तं परिकल्पये परिकल्पयिष्ये । पुष्पिताग्रावृत्तम् । अत्र गर्वो नाम नाट्यालङ्कारः । ८

शिवराज—प्रवेश कराओ ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (चला जाता है)

चर—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । बीजापुर नरेश का सेनापति उनकी सभा में सह्याद्रि के मूषक को पकड़कर शीघ्रातिशीघ्र उसके सामने प्रस्तुत कराने की प्रतिज्ञा कर, मार्ग में भवानी की मूर्ति को खण्ड-खण्ड करके बारह सहस्र सैनिकों का दल लेकर पापी पहुंच चुका है । (चला जाता है)

शिवराज—(सुनकर क्रोध में) अरे शठ !

मदान्ध ! यह क्यों व्यर्थ में बकवास करता है ? क्या तुम्हें सूर्यवंश के प्रताप का ज्ञान नहीं है । अस्तु, शीघ्र ही मैं, दूसरे के धन से परिपुष्ट तुमको महिष की भाँति भवानी के लिए बलि के रूप में अर्पण करूंगा । ८

नेताजी—(क्रोध-सहित) देव, उस आततायी को पकड़ने के लिए मुझे तुरन्त आदेश दें । आज ही मैं—

कामक्रोधातिरेकव्यसनविदलितं दुर्विनीतं मदान्धं,
त्वत्कोपाग्निप्रदग्धं परिणतविभवं चायुषोऽन्तं गतं तम् ।
हत्वा निःशेषतस्तद्बलमतिविपुलं तर्पयित्वा कृपाणम्,
जीवग्राहं गृहीत्वा निगडितचरणं तेऽन्तिकं प्रापयामि ॥९

शिवराजः—(विचिन्त्य) वीर ! नात्र साहसप्रतिपत्तिरुचिता ।
तत्त्वयाऽधिष्ठिताः

प्रच्छन्नं परिपन्थिनां परिचयं कुर्वन्त्वनल्पं स्पशा,
अध्यक्षाः स्वपदातिसादिनिवहान्संनाहयन्तूद्यताः ।

कामक्रोधेति । जीवग्राहं गृहीत्वा जीवन्तं गृहीत्वेत्यर्थः । अत्रोत्साहः स्थायिभावो निजभर्तृपरिपन्थ्यालम्बनं तर्जनमनुभाव आक्षेपो गर्वश्च सञ्चारिणौ । एवमत्र युद्धवीरो रसः । स्रग्धरावृत्तम् । ९

प्रच्छन्नमिति—स्पशाः चराः परिपन्थिनां, रिपूणामनल्पं गाढं परिचयं प्रच्छन्नं कुर्वन्तु । अध्यक्षाः सेनाविभागाधिकृताः उद्यताः सन्तः स्वपदातिसादिनिवहान् सन्नाहयन्तु सज्जीकुर्वन्तु ।—

काम, क्रोध आदि व्यसनों से जर्जरित दुर्विनीत और मदान्ध उसको, जो आपकी क्रोधाग्नि से जल रहा है, जिसका वैभव और आयु समाप्त होने को है, मैं उसके समस्त सैन्य दल को मार कर अपनी तलवार की प्यास बुझाकर, अन्त में जीवित ही पकड़ कर और चरणों में बेड़ी पहिनाकर आपके सामने उपस्थित करता हूं । ९

शिवराज—(सोचकर) वीर, अभी साहस करने का समय नहीं है । इसलिए तुम्हारे निरीक्षण में—

गुप्तचरों को शत्रुओं के विषय में पूर्णतः परिचय प्राप्त करने दो, पदाति, अश्वारोही आदि सेना-विभागों के 'अध्यक्ष उन्हें तैयार करें,

दुर्गाणामवने भवन्त्ववहिता दुर्गाधिपा निश्चलाः,
सद्यो रोपयितुं प्रतापमुदितः कालो द्विषामन्तकः ॥१०

नेताजीः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपालः—(प्रविश्य) देव ! अरातिनिसृष्टो दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

कृष्णाजीः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः ।

शिवराजः–स्वागतं विप्रवर्यस्य ।

कृष्णाजीः —अप्यनामयं महाराजस्य ।

शिवराजः—अथ किम् ।

दुर्गाधिपाः निश्चलाः सन्तः दुर्गाणामवने रक्षणे अवहिताः सावधाना भवन्तु । सद्यः प्रतापं रोपयितुं द्विषामन्तकः कालः उदितः प्रादुर्भूतः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । १०

दुर्गों के अधिकारी, दुर्गों की रक्षा के लिए निश्चल सावधान रहें, अब हमें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर है और शत्रुओं के विनाश का समय आ गया । १०

नेताजी—जो आज्ञा (चला जाता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव, शत्रु द्वारा प्रेषित दूत द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है ।

शिवराज—अन्दर ले आओ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है)

कृष्णाजी—(प्रवेशकर) महाराज की जय हो ।

शिवराज—विप्रश्रेष्ठ का स्वागत है ।

कृष्णाजी—महाराज कुशल तो हैं ।

शिवराज—हाँ ।

कृष्णाजी;— देव ! उभयतः सैनिकानां विनाशं परिजिहीर्षुरावेद-यत्यस्मत्सेनापतिर्यन्महाराजेन स्वकुलपरम्परागतवृत्तिस्वीकरणेन परित्यज्य बीजापुरेशस्य विरोधमङ्गीकर्तव्यो भृत्यधर्म इति ।

शिवराजः— नास्त्यस्माकं बीजापुरेशेन सह कोऽपि विरोधः । किन्तु दुर्वृत्तेभ्यस्तदधिकृतेभ्यः प्रजायाः पालनार्थमेवायमस्मदुपक्रमः ।

कृष्णाजीः—तन्महाराजेन स्वायत्तीकृतस्य प्रदेशस्याधिपत्ये तावद् भविष्यति महाराजस्यैव नियोगः । तद्यथा बीजापुरेशशासनमनुरुध्य शाहजीमहाराजः कर्णाटप्रदेशं पालयति तथैव महाराजेन सह्यप्रदेशः पालनीयः । एतदर्थं च महाराजेन यथावकाशं द्रष्टव्योऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराजः – अत्र नास्माकं विप्रतिपत्तिः । कः कोऽत्र भोः !

द्वारपालः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

कृष्णाजी—देव, दोनों ओर के सैनिकों का विनाश रोकने के लिए हमारे सेनापति का निवेदन है कि महाराज शत्रुता को भुलाकर, अपने कुल की परम्परा के अनुसार बीजापुर नरेश का सेवक धर्म स्वीकार कर लें ।

शिवराज—बीजापुर नरेश से हमारा कोई विरोध नहीं है किन्तु दुर्वृत्तिवाले अधिकारियों से प्रजा की रक्षा करने के लिए हम यह साहस कर रहे हैं ।

कृष्णाजी—महाराज द्वारा अधिकृत प्रदेश पर महाराज का ही आधिपत्य एवं शासन रहेगा । जैसे बीजापुरनरेश के शासन को स्वीकार कर शाहजी महाराज कर्णाटप्रदेश का पालन करते हैं उसी प्रकार सह्य प्रदेश का पालन महाराज को करना चाहिए । इसी लिए महाराज सुविधानुसार हमारे सेनापति से भेंट करें ।

शिवराज—इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है कौन है यहाँ ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आज्ञा दें ।

शिवराजः—प्रापयैनं विप्रवर्यमावेशिकमन्दिरम् । उच्यतां च मद्
वचनात्तत्राधिकृतो यदेष द्विजोत्तमो राजोपचारैः सम्भावनीय इति ।

द्वारपालः—तथा । (इति दूतेन सह निष्क्रान्तः)

शिवराजः—मन्त्रिणः, अनेन किमपि हृदये कृत्वाऽन्यदेव मन्त्रितमिति
लक्ष्यते । यतः—

नयप्रयुक्तैर्मधुरैर्वचोभिः, प्रतारणार्थं ध्रुवमुद्यतस्य ।
कालुष्यमन्तः स्थितमस्य केवलं, व्यनक्ति विच्छायमुखच्छविः स्वयम् ॥११

मन्त्री—एवमेतत् । यतः—

नेत्रप्रसादः स्मयमाननद्युतिः स्वाभाविकी चैव वचःप्रवृत्तिः ।
अल्पोपचारो गतमप्यविक्लवं, विवृण्वतेऽन्तर्हृदयस्थमार्जवम् ॥१२

तत्कथमपि ज्ञातव्यमस्य मनोगतम् ।

शिवराज—इन द्विजश्रेष्ठ को अतिथिभवन में पहुंचाओ । और मेरे आदेशानुसार वहाँ के अधिकारी से कहो कि इन द्विजश्रेष्ठ का राजोचित रीति से सम्मान (आतिथ्य) होना चाहिए ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (दूत के साथ चला जाता है)

शिवराज—मंत्रियो, यह अपने हृदय में कुछ और ही गुप्त रखकर कुछ और ही सोचता है । क्योंकि–

नीतियुक्त मधुरवाणी से हम लोगों को ठगने के लिए उद्यत इसके मुख की धुंधली कान्ति इसके कलुषित अन्तः करण का आभास करा रही है । ११

मन्त्री—ऐसा ही है । क्योंकि—

उसकी दृष्टि, मुखाकृति, वाणी की स्वाभाविकता, नियमित व्यवहार और निर्भयता उसके हृदय में स्थित कुटिलता का आभास कराते हैं ।१२

अतः किसी प्रकार हमें इसके मन की बात जाननी चाहिए ।

शिवराजः—पूर्वं तावद्यवनसेनापतये विसृष्टोऽस्मद्दूतस्तमावेदयतु । यद्
प्रमादतस्त्वादृतसाहसः प्रभुर्महद्विरोधादनुतप्यमानः ।
निरीक्ष्य नेत्रप्रतिघाति ते महो धैर्यच्युतः प्रार्थयते तवाश्रयम् ॥१३
अनेनोत्सिच्यमानः स मदान्धोऽस्मन्नयपाशधृतो भविष्यति ।
मन्त्रीः—सद्य एव प्रेषयामि पन्तोजीगोपीनाथमेतदर्थसंसिद्धये ।
(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—अहमपि तावत्प्रत्यर्थिदूतं विविक्त उपगृह्णामि ।
(इति मन्त्रगृहान्निर्गत्य परिक्रामति । परितो विलोक्य) अहो !
निशेयमाक्रान्ततमिस्रभीषणा, पापात्मनां पापचिकीर्षिते हिता ।
स्वधर्मदक्षे नृपतौ तु जाग्रति, स्वपन्ति सर्वा अकुतोभयाः प्रजाः ॥१४

प्रमादतइति—प्रमादतः तु आदृतं संमतं साहसं येन सः प्रभुः शिवराजः महता वीजापुरेशेन सह विरोधात् हेतोः अनुतप्यमानः नेत्रे प्रतिहन्ति तत् नेत्रप्रतिघाति ते तव महः तेजः निरीक्ष्य धैर्यात् च्युतः भ्रष्टः सन् तव आश्रयं शरणं प्रार्थयते । उपजातिवृत्तम् । अन्नाभूताहरणं नाम सन्ध्यङ्गम् ।१४

निशेयमिति । आक्रान्तं यत् तमिस्रमन्धकारः तेन भीषणा पापात्मनां पापं यत् चिकीर्षितं तस्मै हिता इयं निशा अस्ति । तु तथापि स्वधर्मे प्रजापालनरूपे दक्षे तत्परे नृपतौ जाग्रति सति सर्वाः प्रजाः नास्ति कुतः भयं यासां ताः अकुतोभयाः सत्यः स्वपन्ति । १४

शिवराज—सर्वप्रथम यवनसेनापति के पास अपना दूत भेजकर कहलाएँ कि—

प्रमादवश शिवाजी ने यह कार्य करने का साहस किया और अब यह महाशक्तिशाली से विरोध करने के कारण पश्चात्ताप कर रहा है, आँखों को चकाचौंध करनेवाले आपके महातेज को देखकर धैर्य खो चुका है और आपकी शरण चाहता है । १३

इस प्रकार वचनों से सिंचित होकर वह मदान्ध हमारे नीतिपाश में बँध जायेगा ।

मन्त्री—शीघ्र ही पन्तोजी गोपीनाथ को इस कार्य की सिद्धि के लिए गृह भेजेंगे । (चला जाता है)

शिवराज—मैं भी शत्रुपक्षीय दूत से एकान्त में मिलता हूँ । (मंत्रणा-गृह से निकलकर घूमता है । चारों ओर देखकर) अहो,

भीषण अन्धकार से युक्त यह भयानक रात्रि पापकर्मियों के पापकर्म-सम्पादन हित उपयुक्त है परन्तु धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य-पालन में दक्ष राजा सजग रहे तो उसकी प्रजा निर्भय होकर सोती है । १४

(पुरतो विलोक्य) एतदावेशिकमन्दिरम् । यावत्प्रविशामि ।

(ततः प्रविशति सुवर्णमञ्चावस्थितोऽरातिदूतः)

दूत;—(ससंभ्रममुत्थाय) अहो महाराजः । कोऽयं मध्य-साधारणोऽनुग्रह; ।

शिवराज :—(महार्हरत्नमुपायनीकृत्य) धर्म एवैष क्षत्रियाणां यद् विप्रोपासनम् (इति मञ्चान्तरमुपविशति)

दूतः—(उपविश्य) देव ! त्वादृशा धर्मज्ञा एवार्हन्ति लोकतन्त्रा-धिकारम् ।

शिवराजः—विप्रवर्य ! सर्वत्र ब्रह्मैधितमेव क्षत्रं समृध्यते । बृहस्पतिपुरोगमा देवा विप्रपुरोगमाश्च राजन्या एव युज्यन्ते विजयश्रियेति पुराणप्रसिद्धिः ।

दूतः—महाराज ! संप्रति तु क्षत्रापचारपरिपीडितानां विप्राणां यवनेशोपाश्रयादृते नास्त्यन्यदवलम्बनम् ।

(सामने देखकर) यह अतिथिगृह है । इसमें प्रवेश करूँ ।

(स्वर्णमञ्च पर स्थित शत्रुदूत का प्रवेश)

दूत—(घबराया हुआ उठकर) अरे महाराज । मुझ पर यह विशेष अनुग्रह क्यों ?

शिवराज— (बहुमूल्य रत्न देते हुए) क्षत्रियों का धर्म ही ब्राह्मणों की पूजा है । (दूसरे मञ्च पर बैठते हैं ।)

दूत—(बैठकर) आप जैसे धर्मज्ञ ही लोक-शासन के अधिकारी हैं ।

शिवराज—विप्रवर्य, ब्राह्मणों की सहायता से ही क्षत्रियों की समृद्धि होती है । पुराण प्रसिद्ध है कि बृहस्पति के नेतृत्व में देवता और ब्राह्मणों के नेतृत्व में राजा विजय प्राप्त करते हैं ।

दूत—महाराज ! इस समय तो क्षत्रियों के व्यवहार से पीड़ित ब्राह्मणों के लिए बीजापुरनरेश के अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं है ।

शिवराजः—तथ्यमेवाभिहितं विप्रवर्येण । अत एवैतान्नृपापसदानुन्मूलयितुं मया शस्त्रमुद्धृतम् ।

दूतः—सर्वथाऽभिनन्द्य एव तव धर्म्यो व्यवसायः । परन्तु प्रथममेव बलिना यवनेशेन विग्रहमारभमाणस्य तव महती नयच्युतिः ।

शिवराजः—संभाव्यमेतत् । तथापि न केवलं यवनसहाय एव प्रभवति प्रशासितुं निजराष्ट्रं यवनेश्वरः । सन्ति तत्राप्यविकृताः स्वधर्मपरमा धर्मवीरा ये पुनः समुपस्थित उपप्लवे ममोपकरिष्यन्तीत्यवधार्यैव मयादृत एष उपक्रमः ।

दूतः—परन्तु स्वधर्मनिष्ठानामपि भर्तुरनिष्टापादनेन त्वपरिहार्य एव कृतघ्नतादोषः ।

शिवराजः—विप्रवर्य, ! कोऽयं व्यामोहो भवादृशानां वेदधर्मतत्त्वविदुषाम् । 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' इति तु साक्षाद्भगवतैव तार-

---

शिवराज :—द्विजश्रेष्ठ, सत्य ही कह रहे हैं आप । इसीलिए इन दुष्ट राजाओं का समूल नाश करने के लिए मैंने शस्त्र उठाया ।

दूत—यह आपका धर्म-व्यवसाय सर्वथा प्रशंसनीय है । परन्तु शक्ति सम्पन्न बीजापुरनरेश से युद्ध-घोषणा कर देना आपकी राजनैतिक भूल है ।

शिवराज—भले ही यह सम्भव हो तथापि बीजापुरनरेश केवल यवनों की सहायता से शासन नहीं कर सकते । उनके यहाँ अपने धर्म को श्रेष्ठ माननेवाले धर्मवीर लोग भी हैं जो आवश्यकता पड़ने पर क़ठिन समय में मेरी सहायता करेंगे । इसी धारणा से मैंने यह प्रयास प्रारम्भ किया है ।

दूत—परन्तु अपने धर्म में निष्ठा रखनेवालों को भी, स्वामी का अनिष्ट करने पर कृतघ्नता का दोष होगा ही ।

शिवराज—विप्रवर्य, आप जैसे वेद और धर्म तत्त्वनिष्णात को भी भ्रम (संकट) हो रहा है । 'अपने धर्म में रहकर मर जाना ही श्रेयस्कर है' यह साक्षात् भगवान् ने उच्चस्वर में उद्घोषित किया है ।

स्वरेणोद्घोषितम् । यदि स्वधर्मनिष्ठानां धर्मार्थमात्मनाशोऽपि श्रेयांस्तदा कियान् भर्तुर्विप्रकारः । पुराऽपि धर्मार्थम्

वज्रस्य निर्माणविधौ सुरार्थितां, स्वयं महर्षिस्तनुमप्यहासीत् ।
शिरः कुठारेण च जामदग्न्यश्चिच्छेद मातुर्गुरुणा नियुक्तः ॥१५

दूतः—देव । नात्र प्रवर्तते मे प्रतिवचनम् ।

शिवराजः—अये द्विजोत्तम !

भवन्ति विप्रा यदि धर्ममूर्तयो, विरोधिन धर्मपरस्य भूभृतः ।
तदा प्ररोहैः सह धर्मपादपः, समूलमुच्छेदमवाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१६

दूतः—(विचिन्त्य) कीदृशं साहाय्यमपेक्षते महाराजः ।

शिवराजः—केवलं तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सेनापतेश्चिकीर्षितम् ।

वज्रस्येति । वज्रस्य निर्माणस्य विधौ कर्मणि सुरैः देवैः अर्थितां याचितां तनुं स्वदेहमपि महर्षिः दधीचिनामा स्वयमहासीत् त्यक्तवान् । च जमदग्नेः अपत्यं पुमान् जामदग्यः परशुरामः गुरुणा पित्रा नियुक्तः आज्ञप्तः कुठारेण मातुः शिरः चिच्छेद । उपजातिवृत्तम् । अत्र निदर्शनाख्यं लक्षणम् । १५

यदि अपने धर्म में निष्ठावान् रहकर धर्मार्थ आत्मनाश भी श्रेयस्कर है तो स्वामी के, अपमान से क्या ? प्राचीनकाल में भी धर्मार्थ—

महर्षि दधीचि ने देवों की याचना सुनकर वज्रनिर्माणार्थ अपना शरीर त्याग दिया । परशुराम ने पिता के वचन का पालन करने के लिए माता का शिर कुठार से काट डाला । १५

दूत—देव, इसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कह सकता ।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ !

धर्ममूर्ति ब्राह्मण यदि धर्मनिष्ठ राजा के विरोधी हो जायँ तो धर्मवृक्ष का उसकी शाखाओं-सहित निश्चित ही समूल नाश सम्भव है । १६

दूत (सोचकर) कैसी सहायता आप चाहते हैं महाराज ?

शिवराज—सेनापति की योजना मात्र सही-सही जानना चाहता हूँ ।

दूतः—(स्वगतम्) किं कर्तव्यो मया रहस्यभेदः। उत घातयितव्यो धर्मावतारः। अस्तु धर्मावतारस्यैव रक्षणेन रक्षितो भविष्यति धर्मो नान्यथा। (प्रकाशम्) देव! न किमप्यस्ति तवावाच्यम्। तच्छृणु। कथमपि त्वां विश्वस्यात्मनः प्रतिज्ञां निर्वाहयितुमुत्कण्ठतेऽस्मत्सेनापतिः।

शिवराजः—अहो नु खलूज्जीवितोऽस्मि। द्विजोत्तम! न कदापि स्मृतिपथमतीतो भविष्यति तवायमनुग्रहः। परन्त्ववशिष्यते किंचित्कर्तव्यान्तरम्।

दूतः—निशङ्कमाख्यातु धर्मवीरः।

शिवराजः—विप्रवर्य! 'अतीव भयाकुलः शिवराजो महता सैन्येन परिवृतं त्वामुपाश्रयितुं न धृष्णोति। अतो दुर्गपरिसर-प्रतिष्ठापितोपकार्यामुपेत्य त्वयैकाकिना स हस्तगतः कर्तव्यः।

दूत—(स्वगत) क्या रहस्यभेदन मुझे करना चाहिए। अथवा धर्मावतार की हत्या होने दूँ? अस्तु धर्मावतार की ही रक्षा करने से धर्म की रक्षा होगी अन्यथा नहीं। (प्रकाश) देव! कुछ नहीं है, जो आप से छिपाऊँ। अतः सुनिए। हमारे सेनापति किसी प्रकार आपको विश्वस्त करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहते हैं।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, आपका यह अनुग्रह कभी भी भूल नहीं सकता। परन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ करना शेष है।

दूत—निश्शंक होकर कहो धर्मवीर।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, अपने सेनापति से कहो 'विशाल सेना से घिरे हुए रहने के कारण अत्यन्त भयभीत शिवराज आपके पास आने का साहस नहीं कर सकता। अतः दुर्ग के समीप राज-शिविर में आप अकेले उसे मिलकर हस्तगत कर लीजिए। अन्यथा उसके कहीं

अन्यथा तस्मिन् कुत्रापि पलायिते तव प्रतिज्ञाहानिप्रसङ्गः।'—इति तमनुनीय संपादयावयोरेकान्तसमागमम्। अतः परं यद्भावि तद्भवतु।

दूतः—देव ! अत्र विस्रब्धो भव। त्वया पुनरात्मदूतमुखेनैतदेव तस्य संदेष्टव्यम्।

शिवराज :—तथा।

दूत:—सद्य एव तावत् प्रतिष्ठे देवस्याभीष्टसंपादनाय।

शिवराज :—अहमपि मन्त्रगृहमुपेत्य प्रतिपालयामि चरमाध्यवसायम्। (इति निर्गत्य परिक्रामति) (स्वगतम्)। दिष्ट्या सुसपन्न एव पूर्वरङ्गः।

क्षेत्रेऽपि सीरोत्कषणावकल्पिते, उप्त्वा सुबीजानि समृद्धभूमौ।
समुद्गतेष्वेष नवाङ्कुरेषु, क्षेत्री समुत्पश्यति शस्यसंपदम्॥१७

क्षेत्रेऽपीति। समृद्धायां बहुशस्यप्रदायां भूमौ सीरेण हलेन यदुत्कषणं कर्षणं तेन अवकल्पिते बीजारोपणार्थं सज्जीकृते अपि क्षेत्रे सुबीजानि उप्त्वा आरोप्य नवाङ्कुरेषु समुद्गतेषु सत्सु क्षेत्री शस्यसंपदं पाक-समृद्धिं समुत्पश्यति प्रतीक्षते। उपजातिवृत्तम्।१७

भाग जाने पर आप की प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हो पायेगी।' इस प्रकार हम दोनों का एकान्त मिलन करायें। उसके पश्चात् जो होना होगा, होगा।

दूत—देव, विश्वास रखें। आप भी ऐसी ही सूचना अपने दूत से भिजवा दें।

शिवराज—ठीक है।

दूत—देव का अभीष्ट पूर्ण करने के लिए मैं चला।

शिवराज—मैं भी मंत्रणागृह में पहुंचकर परिणाम की प्रतीक्षा करता हूं। (उठकर चलता है) (स्वगत) भाग्य से पहली योजना सफल हुई।

कृषक खेत को हल से भली भाँति जोतने के पश्चात् अच्छे बीज बोकर, उसमें नव अंकुरों को उगा देख शस्य की अच्छी पैदावार की आशा करता है। १७

अनेनाक्षिप्तेऽपि भाविविजये कथं निर्वृतिं नाधिरोहति मेऽन्तरात्मा। यावदन्तःपुरमुपेत्याम्बया सह संमन्त्रये। (पुनः परिक्रम्य) अहो सा तु मामेव प्रतिपालयन्त्यद्याप्यवतिष्ठते।

(इति अन्तःपुरं प्रविशति)

(ततः प्रविशति राजमाता राज्ञी च)

राजमाता—वत्स! अप्यनुकूलितः प्रत्यर्थिदूतः।

शिवराजः—अथ किम्। परन्तु कदाचिद्दुर्दैवतोऽत्र विपरीतमापद्येत तदानीं त्वयाऽधिष्ठितेनोमाजीराजेन प्रवर्तनीयः स्वराज्यसंस्थापनोद्योगः इत्येषा ममाभ्यर्थना।

राजमाता—वत्स! देवतानुग्रहशालिनस्ते नास्त्यपायशङ्कावसरः। तद्—

इस सफलता से भावी विजय सम्भावित हो जाने पर भी मेरा हृदय भी शान्ति क्यों नहीं पा रहा है। चलूँ अन्तःपुर में माता जी से मन्त्रणा करूँ। (पुनः घूमकर) वह तो इस समय भी मेरी ही प्रतीक्षा करती हुई बैठी हैं।

(अन्तःपुर में जाते हैं)

(उसके पश्चात् राजमाता और राज्ञी का प्रवेश)

राजमाता—वत्स, शत्रुपक्षीय दूत को अनुकूल कर लिया?

शिवराज—हाँ। परन्तु कदाचित् दुर्भाग्य से प्रतिकूल हो जाय उस स्थिति में मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि स्वराज्य-संस्थापना का जो उद्योग प्रारम्भ है वह अपने निर्देश में उमाजीराज से चलाती रहें।

राजमाता—वत्स, देवताओं का तुम्हारे ऊपर अनुग्रह है, हानि की शंका का अवसर नहीं है। अतः

यवनसादिपदातिसमुद्धतं, रिपुदलं परिमृद्य रणाङ्गणे ।
विजयदुन्दुभिनिःस्वननन्दितः पुनरुपेत्य विनोदय मातरम् ॥१८

वत्स ! रक्षतु त्वां समन्ततः समराधिष्ठात्री परदेवता ।

शिवराजः—शिरसाऽभिनन्द्यन्तेतवाशिषः ।

राजमाता—परास्ताः सन्तु ते विद्विषः ।

राज्ञी—विजयश्रीविलसितस्य भवतु तवाचिरेण मङ्गलागमनम् ।

शिवराजः—कः कोऽत्र भोः ।

कञ्चुकी—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

मुगलों की अश्वारोही, पैदल सेना-युक्त शक्तिशाली (शत्रु) दल का रणक्षेत्र में मर्दन कर विजयदुन्दुभि के स्वर से हर्षितमन आकर माता को आनन्दित करो ।१८

वत्स, परमशक्ति रणदेवी हर प्रकार तुम्हारी रक्षा करें ।

शिवराज—तुम्हारा आशीर्वाद शिरमाथे ।

राजमाता—तुम्हारे शत्रु परास्त हों ।

राज्ञी—विजयश्री से शोभित शीघ्र ही तुम्हारा, मंगलागमन हो ।

शिवराज—कौन है ।

कंचुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा दें देव ।

शिवराज—मंत्रणागृह का मार्ग दिखाओ ।

कंचुकी—इधर, इधर से देव । (दोनों चलने का नाट्य करते हैं)

यह मन्त्रणागृह का द्वार है देव चलें । (चला जाता है)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणो दूतश्च)

शिवराजः—(प्रविश्य) अप्युपस्थितोऽस्मद्दूतः।

मन्त्री—एष देवं प्रतिपालयंस्तिष्ठति।

शिवराजः—(दूतं प्रति) किमध्यवसितं यवनसेनापतिना।

दूतः—जातमभीष्टं देवस्य। अद्य प्रातरेवायमभिकांङ्क्षति देवस्य समागमावसरम्।

शिवराजः—भद्र ! सद्य एव निवृत्य तमावेदय 'दुर्गोपत्यकायामुपकल्पितामुपकार्यामुपेत्य यथासमयं त्वया द्रष्टव्यः शिवराजः, इति।

दूतः—तथा (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—सचिव ! त्वं तावच्छीघ्रमुपत्यकायां हिरण्यरत्नमण्डितामुपकार्यामुपकल्पय।

सचिवः—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

(उसके बाद मन्त्री एवं दूत मन्त्रणागृह में स्थित दिखाई पड़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेशकर) क्या हमारा दूत वापस हुआ ?

मन्त्री—देव की प्रतीक्षा में यह बैठा है।

शिवराज—(दूत से) यवन सेनापति ने क्या निर्णय किया।

दूत—देव के इच्छानुसार ही हुआ। वह प्रातःकाल ही देव से मिलना चाहते हैं।

शिवराज—शीघ्र ही लौटकर जाओ और सूचित करो कि दुर्ग के समीप राज-शिविर में निर्दिष्ट समय पर शिवराज से मिलें।

दूत—जो आज्ञा। (चला जाता है)

शिवराज—सचिव तुम शीघ्र ही दुर्ग के निकट बगल में हिरण्यरत्नों से सज्जित शिविर निर्मित कराओ।

सचिव—जो आज्ञा (चला जाता है)

शिवराजः—सेनापते ! त्वं तावच्छैलोत्सङ्गपादपान्तरितपदातिनिवहो मार्गं एव मां प्रतिपालय ।

नेताजीः—तथा (इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री—देव ! सायुधवर्मधरेण त्वया द्रष्टव्यः कुटिलः परिपन्थी ।

शिवराजः—प्रतिपद्येऽहं मन्त्रिवचनम् ।

(इति वर्मं शिरस्त्राणं वृश्चिकास्त्रं व्याघ्रनखांश्च धारयति)

मन्त्री—अत्र भवतु तानाजीवीरस्तव सहायः ।

तानाजीः—पूर्वमेवादिष्टोऽस्म्यम्बया धूर्तयवनसमागमे तव पार्श्वचरो भवितुम् ।

शिवराजः—जीवितसंशयेऽस्मिन्व्यतिकरे त्वमेवार्हसि । मम पार्श्वस्थानम् । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो प्रभातकल्पा हि रजनी । यावत्साधयामः । (इति सपरिवारः तुरगमारुह्य परिक्रामति)

शिवराज—सेनापति, तुम पर्वत के पास वृक्षों की आड़ में अपनी पैदल सेना के साथ मुझे रास्ते में मिलो ।

नेताजी—जो आज्ञा । (चला जाता है)

मन्त्री—देव, शस्त्रास्त्र सहित कवच धारण करके आप उस कुटिल शत्रु से मिलें ।

शिवराज—मन्त्रिवर के कथानुसार ही मैं करूंगा ।

(कवच, शिरस्त्राण, वृश्चिकास्त्र, बघनख धारण करते हैं)

मन्त्री—तानाजी वीर आपके सहायक रहें ।

तानाजी—धूर्त यवन के समागम के समय आपका अंगरक्षक रहने के लिए राजमाता ने पहले ही आदेश दिया है ।

शिवराज— हाँ, इस समय जब मेरा जीवन संकटमय है, केवल तुम ही अंगरक्षक के रूप में साथ रहने योग्य हो । (ऊपर देखकर) ओह रात्रि समाप्त, प्रभात होनेवाला है । हम प्रस्थान करें । (सेवकों के सहित घोड़े पर चढ़कर घूमता है)

(परितो विलोक्य) अमात्य ! क्षणमात्रैणैव संप्राप्ता वयं शैलावरोहसंक्रमम्। एषोऽस्मदागमनं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति सपरिजनो नेताजीः

(ततः प्रविशति सपरिजनो नेताजीः)

नेताजीः—(दूरं विलोक्य) अहो उपस्थितो देवः।

प्रजवतुरगकल्पितासनोऽयं, कवचधरः करवालकुन्तनद्धः।
अरुणितनयनो रुषा महोग्रः, सरभसमेत्यभितो द्विषां कृतान्तः ॥१९

(शिवराजमुपसृत्य) विजयतां देवः। अस्ति सर्वं सुव्यवस्थितम्।

शिवराजः—(परितो विलोक्य) वीर ! पश्य—

एतद्विरूढतरुगुल्मलतावितानमुत्सङ्गवर्तिगहनं गहनान्तरालम्।
प्रच्छन्नसत्वमभितः पवनावधूतमुल्लोलवीचिजलधेः समतां विधत्ते ॥२०

एतद्विरूढेति। विरूढानि तरवश्च गुल्माश्च लतावितानानि च यस्मिन् गहनं निविडमन्तरालं मध्यप्रदेशा यस्य तदेतदुत्सङ्गयोः गिरि-पार्श्वयोः वर्तते इत्युतसङ्गवर्ति प्रच्छन्नानि निगूढानि सत्त्वानि प्राणिनः यस्मिन् पवनेन अवधूतं चलितं गहनं वनं उल्लोलाः वीचयः यस्य तस्य जलधेः समुद्रस्य समतां विधत्ते समुद्र इव आभातीत्यर्थः। वसन्ततिलका-वृत्तम्। अत्र उपमाऽलङ्कारः। २०

(चारों ओर देखकर) अमात्य, क्षण भर में ही हम लोग पर्वत की तलहटी के संकीर्ण मार्ग पर पहूंच गए। नेताजी हमारे आगमन की प्रतीक्षा में साथियों के साथ बैठे हैं। (उसके बाद सैनिक-सहित नेताजी का प्रवेश)

नेताजी—(दूर से देखकर) अहो, देव आ गए।

तीव्रगामी तुरग पर सवार, कवच, धारण किये, तलवार, भाला लिए, लाल-लाल आँखों और महत्तेज के कारण भयानक शत्रुओं के लिए यमराज चले आ रहे हैं।

(शिवराज के पास पहूंचकर) विजय हो देव। सव कुछ व्यवस्थितहै।

शिवराज—(चारों ओर देखकर) वीर देखो—पर्वत के पार्श्व में यह वृक्ष, गुल्म और वितान के कारण गहन वन, जिसमें सर्वत्र प्राणियों का निवास है, वायु चलने से आन्दोलन के कारण लहरें सी उठने से सारा वन समुद्र की समता प्रकट कर रहा है। २०

नेताजी:—देव ! अत्रैव निलीयन्तेऽस्मत्सैनिकनिवहाः ।

शिवराजः—त्वं, तावच्छृङ्गस्वनेनास्मत्संकेतं गृहीत्वा द्रुतमभियुङ्-क्ष्वारातिसैन्यम् ।

नेताजी:—यद्देव ! आज्ञापयति ।

शिवराजः—वयं तावत्पुरतो व्रजामः । (इति सपरिवारो निष्क्रान्तः)

नेताजी;—पदातिसेनापते ! अवगमय सैनिकान् संकेतक्रमम् ।

एसाजी:—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

नेताजी:—गुल्माध्यक्ष ! सज्जीकुरु वैतालिकगणान् प्रयाणपटह-ध्वननाय ।

गुल्माध्यक्षः—यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः)

एसाजी:—(प्रविश्य) आर्य ! गृहीतः संकेतक्रमः सैनिकगणैः ।

नेताजी:—साधु ।

नेताजी—देव यहीं हमारे सैनिक छिपे हुए हैं ।

शिवराज—तुम हमारे शृङ्गनाद (बिगुल की आवाज) का संकेत पाकर तुरन्त शत्रु सेना पर आक्रमण करना ।

नेताजी—जैसी आज्ञा देव ।

शिवराज—हम आगे बढ़ते हैं । (सेवकों सहित जाते हैं)

नेताजी—सेनापते, सैनिकों को संकेत समझा दें ।

एसाजी—जो आदेश । (चला जाता है)

नेताजी—गुल्माध्यक्ष-वैतालिकों को प्रस्थानकालीन नगाड़े बजाने के लिए तैयार करें ।

गुल्माध्यक्ष—जैसी आपकी आज्ञा । (चला जाता है)

एसाजी (प्रवेश कर) आर्य सैनिकगण संकेत का अर्थ भली-भाँति समझ गये हैं ।

नेताजी—ठीक है ।

गुल्माध्यक्षः—(वैतालिकैः सह प्रविश्य) आर्य ! उपस्थिता यथा-देशमेते वैतालिकाः ।

नेताजीः—(तारस्वरेण) भवत सर्वे सावधानाः ।

(शृङ्गध्वनिमाकर्ण्य) प्रवर्तन्तां वो रणातोद्यानि । शीघ्रमभि-सरत सर्वे सेनानिवहाः । (इति सपरिजनो निष्क्रामति)

वैतालिकाः—(पटहध्वनिनोद्गायन्ति । नेपथ्ये पादाधातध्वनिः)

(भूपालीरागेण दादरातालेन गीयते)

भट्टा ! नदताट्टमेव-हर हर हर महादेव ।

प्रकटयत कटप्रतापमरिकुलघटितोपतापहृष्टा, नदताट्टमेव० ॥१

प्रबलराज्यमदविकारकुटिलपरकृतापकाररुष्टा नदता० ॥२

अथ रणगीतं भट्टा इति । हे भट्टाः ! हे भर्तारः ! अट्टमुच्चैः एव हर-हर हर महादेव इति नदत । कटमुत्कटं प्रतापं प्रकटयत । अरिकुलेषु घटित उत्पादितः यः उपतापः सन्तापः तेन हृष्टाः प्रसन्नाः सन्तः । प्रबलः राज्यमदविकारः यस्य तादृशेन कुटिलेन च परेण रिपुणा कृतः यः अपकारः

गुल्माध्यक्ष—(वैतालिकों के साथ प्रवेश कर) आदेशानुसार ये वैतालिक उपस्थित हैं ।

नेताजी—(तीव्र स्वर में) सभी सावधान हो जाओ ।

(शृङ्ग का स्वर सुनकर) नगाड़े बजाओ । सभी सैन्य-समूह तुरन्त प्रस्थान करें ।

वैतालिकगण—(नगाड़े की ध्वनि के साथ गाते हैं । नेपथ्य से पैरों की ध्वनि) (भूपाली राग दादराताल में गाया जाता है)

वीरो, तीव्रस्वर से बोलो-हर, हर, हर महादेव ।

अपने शौर्य पराक्रम को प्रकट कर शत्रुकुल को सन्तप्त करो उससे हर्षित हो, राज्यमद के दुरभिमानी, प्रवल, कुटिल दूसरों को कष्टदेने के कारण उसके अपकार से रुष्ट होकर, तीक्ष्ण बाणों और

निशितशरकृपाणपातसाधितरिपुकटकघाततुष्टा नदता० ॥३
विजयपटहपटुनिनादपाटितपरिपन्थिमादजुष्टा, नदताट्टमेव० ॥४

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं दूतभेदनामा

चतुर्थोऽङ्कः

तेन रुष्टाः क्रुद्धाः सन्तः। निशितानां तीक्ष्णानां शराणां कृपाणानां च पातैः साधितः यः रिपोः कटकस्य सैन्यस्य घातः तेन तुष्टाः सन्तः। विजयपटहानां यः पटुः निनादः ध्वनिः तेन पाटितः विनाशितः यः परिपन्थिनां मादः मदः, तेन जुष्टाः प्रीता सन्तः। अत्र छेकानुप्रासः शब्दालङ्कारः।

कृपाण के सन्धान द्वारा शत्रु-सेना पर घात करके सन्तुष्ट, विजय दुन्दुभि के निनाद से शत्रु के मद को शान्त करके वीरो ! तीव्र स्वर में अट्टहास-सहित बोलो—हर, हर, हर महादेव।

(सभी चले जाते हैं)

दूतभेद नामक

चौथा अंक समाप्त।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो गूढचरौ)

प्रथमः—नूनं वपुःप्रकर्षावलिप्तस्य यवनमातङ्गस्य वधेन समुपार्जितं लोकोत्तरं यशो देवेन ।

द्वितीयः—अर्जितं त्वेतत्प्राणसंशयेन ।

प्रथमः—अहो कथं नामैतत् !

द्वितीयः—आलिङ्गनमिषेणासौ जाल्मो देवं कक्षान्तरे संपीड्य यावदसिप्रहारेणास्य शिरो भेत्तुमुदयुङ्क्त तावदेव देवेन व्याघ्रनखैर्विपाटितमस्य बृहत्तुन्दम् । देवस्य शिरस्त्राणेन च विफलीकृतोऽस्य निस्त्रिंशप्रहारः । अत्रान्तरे साहाय्यार्थमाक्रोशतस्तस्य पूर्वकायो विच्छिन्नश्चण्डविक्रमैकरसेन धर्मावतारेण देवेन । तदानीमेव देवं प्रहर्तुमुद्यतस्तस्याङ्गरक्षको यमसदनं प्रेषितस्तानाजीवीरेण ।

पाँचवाँ अंक

(उसके बाद दो गुप्तचरों का प्रवेश)

प्रथम—निश्चित ही, शरीराभिमानी यवन-सेनापति का वध कर हमारे देव को लोकोत्तर यश मिला ।

द्वितीय—प्राप्त तो हुआ, प्राण-संशय में डालकर ।

प्रथम—यह किस प्रकार ?

द्वितीय—यह शठ, जैसे ही देव को आलिंगन के बहाने अपने कक्ष में ले जाकर तलवार से उनका शिर काटना चाहा, देव ने बघनख द्वारा उसके उदर को फाड़ डाला । उसकी तलवार का घात शिरस्त्राण पर पड़कर निष्फल हो गया । उस बीच सहायता के लिए चिल्लाते हुए उसके धड़ को प्रचण्ड विक्रमवाले धर्मावतार देव ने विच्छिन्न कर दिया । उसी समय देव पर प्रहार करने के लिए उद्यत उसके अंगरक्षक को तानाजी वीर ने यमलोक भेज दिया ।

ततश्च संकेतानुरोधेनाक्रम्य परास्तं बीजापुरेशसैन्यमस्मत्सेनापतिना नेताजी-वीरेण।

प्रथमः—उप्तमनेन खलु साम्राज्यबीजं महाराजेन।

द्वितीयः—अथ किम्। ततः प्रभृति युद्धे गृहीतमुक्ता यवनसैनिका अपि विहाय यवनेशं महाराजाश्रयमन्विष्यन्ति।

प्रथमः—भवन्ति सर्वेऽपि न्यायप्रवृत्तस्य पक्षपातिनः।

द्वितीयः—अनन्तरं च विजित्य पन्हालाप्रभृतीन् यवनदुर्गान् जुन्नरप्रभृतींश्च मोगलदुर्गान् प्रवर्तितं तत्र धर्मचक्रं महाराजेन। ततश्च भावियवनाक्रमणमपेक्षमाणो देवो नानादुर्गसंरक्षणार्थं मंत्रिणो नियुज्य स्वयं पन्हालादुर्गमध्यास्त। अचिरेणैवावरुद्धोऽयं दुर्गराजः पञ्चविंशतिसहस्रदलसमन्वितेन यवनसेनापतिना।ततो महता नयप्रयोगेण प्रतार्य तं यवनसेनापतिमतीतायां

उसके पश्चात् पूर्व नियोजित संकेतानुसार हमारे सेनापति नेताजी वीर ने आक्रमण करके बीजापुर नरेश की सेना को परास्त किया।

प्रथम—इस प्रकार महाराज ने साम्राज्य-स्थापना का बीजारोपण कर दिया।

द्वितीय—और क्या, उसके बाद युद्ध में बन्दी बने यवन सैनिक मुक्त होने पर यवनराज को छोड़कर महाराज का आश्रय चाहते हैं।

प्रथम—सभी न्याय के पक्षपाती होते हैं।

द्वितीय—और उसके पश्चात् पन्हाला और जुन्नर आदि मुगल दुर्गों को जीतकर महाराज ने धर्मराज्य स्थापित कर लिया। फिर यवन-आक्रमण की संभावित आशंका से, देव दुर्गों के संरक्षणार्थ मंत्री को नियुक्त कर स्वयं पन्हाला दुर्ग में स्थित हैं। शीघ्र ही दुर्ग पर पचीस हजार सैनिकों को लेकर यवन सेनापति ने आक्रमण किया। उसके पश्चात् कूट-नीतिक चाल से उसे ठग कर, गत अन्धकारपूर्ण अर्धरात्रि में देव ने

तर्मास्वन्यां निशीथ एव निर्भिद्यावरोधकगंणमल्पपरिजनः प्रस्थितो देवो विशालगडदुर्गम् ।

प्रथमः—अहं तावत्सुगुप्तेन वर्त्मना तत्रैवोपेत्य श्रावयामि देवं मोगलेशोदन्तजातम् ।

द्वितीयः—अहमपि प्रविश्य यवनदलमुपलभेय तत्सेनापतेश्चिकीर्षितम् ।

(इति निष्क्रान्तौ) इति विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति विशालगडदुर्गोपत्यकावस्थितः सपरिजनः शिवराजः)

बाजी :—देव ! दिष्ट्या संप्राप्ता वयं विशालगडदुर्गपरिसरम् । पश्य-

विशालवप्रोन्नतगण्डभित्तिर्दुराक्रमो हस्तमिताग्रमार्गः ।
दुर्गोत्तमोऽयं परिणद्धपार्श्वो, महेन्द्रमातङ्गनिभो विभाति ॥१
तत्सत्वरमेनमधिरोहतु भारतेन्द्रः ।

विशालेति । विशालौ वप्रौ एव उन्नतगण्डभित्ती यस्य दुःखेनाक्रमितुं योग्यःदुराक्रमः हस्तेन मिताः अग्रमार्गाः यस्य परिणद्धौ विस्तृतौ पार्श्वौ यस्य सोऽयंदुर्गोत्तमः महेन्द्रमातङ्गनिभः ऐरावतसदृशः विभाति । उपजातिवृत्तम ।१

अवरोधकों के बीच से अपने थोड़े से सेवकों-सहित विशालगढ़ दुर्ग को प्रस्थान कर दिया ।

प्रथम—तो मैं गुप्तमार्ग से वहाँ पहुंचकर मुगल सम्राट् के क्रिया-कलापों से देव को अवगत कराऊं ।

द्वितीय—मैं भी यवनदल में प्रविष्ट होकर उसके सेनापति की नीति का ज्ञान प्राप्त करूं । (दोनों का प्रस्थान) विष्कम्भक समाप्त ।

(उसके बाद विशालगढ़ दुर्ग में सेवकों सहित शिवराज खड़े हैं)

बाजी—देव भाग्य से हम लोग विशालगढ़ दुर्ग के पास पहुंच गए । देखें उत्तम यह विशालगढ़ दुर्ग, अपनी विशालता ऊंचे-ऊंचे गुम्वदों के कारण उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूंड़ की भाँति अग्रभागवाला, दुरा-क्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से शोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा धारण कर रहा है ।१

अतः भारतेन्द्र तुरन्त इस पर चढ़ें ।

शिवराजः—(परितो विलोक्य) वीर !

आसीन्नभो यद्विशदं समन्तादाच्छादितं किं घनमण्डलेन ।

(विचिन्त्य ससंभ्रमम्)

एतद्ध्रुवं मामनुधावतां द्विषां, पादोद्धतैरेणुभिरस्ति धूसरम् ॥२

तदत्र यत्प्राप्तकालं तदस्माभिरविलम्बेनानुष्ठेयम् ।

वाजीः—देव ! नास्ति तवात्रौत्सुक्यकारणम् । यतः—

दासस्तवायं करवालपाणिः, संबाधवर्त्मन्यकुतोभयः स्थितः ।
अल्पानुगैः शत्रुदलं निपातयन्, निरोत्स्यति द्राक् परिपन्थिसंचरम् ॥३

(दूरं विलोक्य ससंभ्रमम्) ;देव ! त्वरय, त्वरय । सम्प्राप्तं यवनदलम् । अधिरुह्य च दुर्गमावेदय मां पञ्चभिः शतघ्नीस्वनैस्तव तत्र सुखोपस्थितिम् । यावदहमेतानत्रैव प्रतिरुणध्मि ।

शिवराज—(चारों ओर देखकर) वीर,

स्वच्छ आकाश चारों ओर घन-मण्डल से आच्छन्न हो उठा (घवड़ाहट से सोचकर) निश्चित ही यह मेरा पीछा करते हुए शत्रुओं के पादाघात से उठी धूल के कारण धूसरित हो रहा है । २

वाजी—देव उतावला होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि—

आपका यह दास हाथ में तलवार लेकर अल्पसंख्यक सैनिकों के ही सहारे शत्रु-दल का नाश करते हुए शीघ्र ही उसका वढ़ना रोक देगा, इस प्रकार बाधायुक्त मार्ग में मेरे स्थित रहते भय कहाँ । ३

(दूर देखकर, शीघ्रता में) देव, शीघ्रता करें । शीघ्रता करें । यवनों का दल आ पहुँचा । दुर्ग में पहुँचकर आप पाँच तोपों के स्वर से अपनी उपस्थिति की सूचना दें । मैं तव तक इन सव को इसी स्थान पर रोकता हूँ ।

शिवराजः—वीर ! त्वामशरणमेवमुत्सृज्य कथमुत्सहे पदमपि पुरतः प्रक्रमितुम् ।

बाजीः—देव ! नायमवसरो युक्तायुक्तविचारस्य ।

त्वदन्नपानादिविवर्धितोऽयं, भस्मीभवेच्चेदवने तवैव ।
तदास्य चर्मास्थिविनिर्मितस्य, देहस्य मन्ये कृतकृत्यतां पराम् ॥४

शिवराजः—धन्योऽसि मे भृत्यैकवीर ! । रक्षतु त्वां परदेवता ।

अङ्गरक्षकः—इत इतो देवः । (उभौ सत्वरं परिक्रामतः)

शिवराजः—(स्वगतम्) यत्सत्यम्

राष्ट्रैकभक्तिप्रवणैः प्रगल्भैः, सत्त्वोच्छ्रितैरेव रणप्रवीरैः ।
उपासितः सद्य उपैति भूमिपः, स्वातन्त्र्यदेव्याः प्रणयस्य पात्रताम् ॥५

शिवराज—वीर, तुम्हें असहाय, एकाकी छोड़कर एक कदम भी मैं आगे कैसे जा सकता हूँ ।

बाजी—देव ! इस समय उचित-अनुचित सोचने का अवसर नहीं है ।

चर्म और अस्थि से बना यह शरीर जो आप के अन्न एवं पानादि से पालित-पोषित हुआ है, यदि आप के जीवन के ही लिए भस्म हो जाय तो इसे अत्यधिक कृतकृत्य मानूँगा । ४

शिवराज—वीरश्रेष्ठ, तुम धन्य हो । पराशक्ति तुम्हारी रक्षा करे ।

अङ्गरक्षक—इधर, इधर से देव ! (दोनों शीघ्रता में चलते हैं)

शिवराज—(स्वगत) वस्तुतः

जिसके पास राष्ट्रभक्त, साहसी, बलशाली, युद्धभूमि में पराक्रमी सेवक हों, वह नरेश शीघ्र ही स्वातंत्र्य देवी का प्रिय पात्र बन जाता है । ५

अङ्गरक्षकः—एतद्दुर्गपालाधिष्ठितं विशालगडदुर्गस्य सिंहद्वारम्।

(ततः प्रविशति सिंहद्वारावस्थितो दुर्गपालः)

दुर्गपालः—स्वागत देवस्य ।

शिवराजः—प्रथमं तावत्सूचयास्मदुपस्थिति पञ्चभिः शतघ्नीविस्फूर्जितैः ।

दुर्गपालः—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराजः—(वामबाहुस्पन्दनं सूचयित्वा) अरे ! कोऽयं वैकृतागमः ।

तृणाय मत्वा निजजीवितं कृतं, प्राणान्तकष्टे मम येन रक्षणम् ।
वृकावृतस्येव गजस्य तस्य मे, भद्रे ! मनः संशयमेवगाहते ॥६

सैनिकः (प्रविश्य) (ससंभ्रमम्) देव ! हतो बाजीप्रभुः ।

शिवराजः—(निःश्वस्य) हा हताः स्मः (सरोषम्) रे पाप ! शिद्दिहतक कोऽयमपचारः—

अङ्गरक्षक—यह दुर्गपाल से रक्षित विशालगडदुर्ग का सिंहद्वार है ।

(इसके बाद सिंहद्वार पर स्थित द्वारपाल का प्रवेश)

दुर्गपाल—देव का स्वागत है ।

शिवराज—सबसे पहले पाँच तोपों की ध्वनि द्वारा मेरी उपस्थिति की सूचना दे दो ।

दुर्गपाल—जो आज्ञा । (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(बांया बाहु फड़कने की सूचना देते हुए) अरे यह अपशकुन क्यों ?

भद्र, मेरा हृदय अभी भी शंका ही में है—जो वृकों (भेड़ियो) से घिरे हाथी के समान है, और जो अपने जीवन को तृणवत् मानकर, मेरे प्राणसङ्कट पर रक्षा में तत्पर है, रक्षित रह सकेगा । ६

सैनिक—(प्रवेशकर, घबड़ाहट में) देव, बाजी प्रभु मारे गये ।

शिवराज—(निःश्वास लेकर) हम नष्ट हो गये । (क्रोध से) अरे, पापी शिद्दी, यह कैसा दुराचरण ?

एकाकिनं समरवीरमिमं समेतैर्व्यापाद्य सैनिकगणैः क्व नु विक्रमस्ते।

प्रिय भृत्यैकवीर !

आत्मार्पणेन तव पालयतो निजेशं, शुभ्रं यशस्तु परितो विततं त्रिलोक्याम् ॥७

अरे ! विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि ।

सैनिकः—देवस्य प्रस्थानादनन्तरं समन्ततोऽभिपततोऽरातिनिवहान् खण्डशः कृत्वा पञ्चविंशतिक्षतनिःसृतरक्तरञ्जितगात्रेण प्रवीरेण रक्षितो दुर्गारोहमार्गः । तदानीमसौ—

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणिश्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम् ।
मार्गं निरुध्य सहसा समरप्रवीरश्चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलितो विरेजे ॥८

आकृष्टेति । आकृष्टो यो भीषणः भयङ्करः कृपाणः खड्गः तेन करालः विकटः पाणिः यस्य सः समरप्रवीरः छिन्नानि उत्तमाङ्गानि शीर्षाणि यस्य तस्य रिपुसैन्यस्य कबन्धैः कीर्णं व्याप्तं मार्गं सहसा निरुध्य चण्डः प्रकोप एव हुतभुग् वह्निः तेन ज्वलितः दीप्तः विरेजे प्राकाशत । वसन्ततिलकावृत्तम् । ८

अपने सैनिकों की सहायता से एक अकेले इस रणवीर को मारकर कौन-सा पराक्रम किया ?

प्रिय वीरवर भृत्य !

अपने आपको समर्पित कर अपने स्वामी की रक्षा करनेवाले, तुम्हारा धवलयश तीन लोकों में बिखर गया । ७

ओह ! मैं विस्तार से जानना चाहता हूँ ।

सैनिक—देव के प्रस्थानोपरान्त चारों ओर से घेरे हुए, शत्रु-दल को खण्ड-खण्ड करके, पचीस घावों से प्रवाहित रक्त से रंजित शरीर उस वीर ने दुर्ग के प्रवेश द्वार की रक्षा की । उसी समय वह—

भीषण कृपाण खींचे हुए करालपाणि से शत्रु-सैनिकों के शिर को काट उनके कबन्धों से मार्ग को व्याप्त कर वह समरवीर, सहसा प्रज्ज्वलित प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशित हुआ । ८

शिवराजः—(स्वगतम्) अहो क्षत्रवीर ! एवं लोकोत्तरविक्रमेण त्वयाद्य रक्षितं धर्मराज्यम्।

सैनिकः—एवं पराहते रिपुदले पापेन शिद्दिहतकेन शतघ्नीगोलकैर्विद्धः स देवस्य सुखोपस्थितिसूचकशतघ्नीस्वन एव दत्तावधान स्वामिचिन्तापरो भूमौ निपपात।

शिवराजः—(सरोषम्) आः पाप !. कूटाभियोगनिस्त्रपक्षुद्र ! अचिरेणैव त्वामशेषदुरितफलभागिनं करिष्यति शिवराजः।

सैनिकः—ततश्च समाकर्ण्य संकेतितं शतघ्नीस्वनं—'अहो संपन्नः स्वामिनियोगः । भगवति ! देहि मे शरणम्—इति सहसोदीर्य स प्राणानजहात् ।

शिवराजः—(निःश्वस्य) क्षत्रैकवीर ! विरला हि त्वादृशाः स्वामिभक्ताः ।

शिवराज—(स्वयं) अहो, क्षत्रिय वीर, इस प्रकार अनुपमपराक्रम से तुमने आज धर्मराज्य की रक्षा की ।

सैनिक—इस प्रकार शत्रुदल के हत होने पर पापी शिद्दी ने तोप की गोली से उन पर घात कर दिया, तव वह देव की उपस्थिति-सूचक तोप की ध्वनि की ही ओर ध्यान लगाये स्वामी की चिन्ता से व्याकुल भूमि पर गिर पड़े ।

शिवराज—(सक्रोध) ओह पापी, क्षुद्र अपने शत्रु के साथ कूटनीति का प्रयोग (धोखा) करते लज्जा नहीं आयी तुम्हें ? शीघ्र ही शिवराज तुम्हें इस दुष्कृत्य का फलभागी वनायेगा ।

सैनिक—उसके वाद शतघ्नी का स्वर सुनकर-अहो स्वामी के प्रति कर्तव्य पूरा हुआ। भगवती ! मुझे शरण दो', कहते हुए प्राणों को छोड़ दिया ।

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर) श्रेष्ठ क्षत्रियवीर, तुम्हारे समान स्वामिभक्त विरले ही हैं ।

प्रारब्धकर्मवशगाः क्रमशो विकारान्, सर्वेऽनुभूय ननु कालवशं प्रयान्ति ।
नूनं स एव निजदेशनरेशभक्तो, धन्योऽस्ति यस्य निधनं ज्वलितं यशोभिः ॥६

अये दुर्गपाल ! भवतु राजोपचारेण मम वीरस्यान्त्यक्रिया । अद्यैवाहं तस्य राजभक्तस्य सप्तपुत्रान् ममाङ्गरक्षकपदे नियुञ्जे ।

चरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । संप्रति देवं दुर्जयं मत्वा परावृत्त ससैन्यः शिद्दिहतकः ।

शिवराजः—भद्र ! त्वं तावद्यवनेशमुपेत्यावेक्षस्व तस्य भाविचिकीर्षितम् ।

चरः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

गूढचरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

प्रारब्धेति । प्रारब्धं फलाय प्रवृत्तं यत् कर्म तस्य वशं गच्छन्ति तादृशाः सर्वे जन्तवः इति शेषः क्रमशो विकारान्-जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति च—इति अनुभूय कालवशं प्रयान्ति म्रियन्ते इत्यर्थः किन्तु यस्य निधनं यशोभिः ज्वलितमस्ति स एव निजदेशनरेशभक्तः नूनं धन्योऽस्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् । ६

सभी मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार क्रमशः कर्म के वशीभूत, क्षीण होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सत्यतः वह धन्य है जिसने अपने देश और नरेश की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दिया, जिसकी मृत्यु भी यश से प्रकाशित होती है । ६

दुर्गपाल, राजोपयुक्त ढंग से मेरे वीर की अंत्येष्टि क्रिया हो । मैं आज ही उस राजभक्त के सातों पुत्रों को अङ्गरक्षक के पद पर नियुक्त करता हूं ।

चर—(प्रवेशकर) विजय हो देव । सम्प्रति देव को दुर्जेय मानकर सेना सहित अधम सिद्दी लौट गया है ।

शिवराज—भद्र, तुम यवनराज के पास पहुँचकर उसकी भविष्य की योजनाओं का ज्ञान प्राप्त करो ।

चर—जो आज्ञा । (निकल जाता है)

गूढचर—(प्रवेशकर) देव विजय हो ।

शिवराजः—कथं प्रचलति दिल्लीशतंत्रम् ।

गूढचरः—देव । महानस्ति तत्र विपर्यासः ।

न्यायानुर्वर्तिनमसौ स्वगुरुं निगृह्य,
राज्याधिरोहणमदास्तविवेकतत्त्वः ।
आशङ्क्य विश्वसिति नैव निजे परे वा,
संबाधते प्रकृतिमात्तमहोग्रदण्डः ॥१०

संप्रति तदादेशानुरोधेनोद्यतो दक्षिणापथाधिपश्चाकणदुर्गोपरोधाय ।

शिवराजः—पुनरपि ज्ञायतां तस्य प्रवृत्तिः ।

गूढचरः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—दुर्गपाल ! प्रवर्त्यंतामस्मच्छासनमधिकृतेषु यदुपस्थिते प्राणसंकटे जनपदं विहाय तैर्दुर्गाः समाश्रयणीया महता प्रयत्नेन च ते रक्षणीया इति । तथा चादिश्यतां मन्त्री यत्त्वया नौसाधनेन स्वायत्तीकर्तव्यो जंजीराद्वीप इति । तथैव सेनापतिनाप्याक्रमणीया अरक्षिता मोगलप्रदेशा

शिवराज—दिल्लीपति का शासन किस प्रकार चल रहा है ?

गूढचर—देव, बहुत परिवर्तन आ गया है ।

न्यायपथ का अनुसरण करनेवाले अपने पिता को बन्दी बनाकर राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हो, राजमद से विवेकहीन होकर वह अपने और पराये किसी भी व्यक्ति में विश्वास नहीं रखता एवं अपनी उद्दण्डता के कारण प्रजा को पीडित करता रहता है । १०

इस समय उसके आदेशानुसार दक्षिण प्रदेश का अधिपति चाकण दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए तैयार है ।

शिवराज—पुनः उसकी प्रवृत्ति का ज्ञान करो ।

गूढचर—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—दुर्गपाल हमारे शासनाधिकारियों को सूचित कर दो कि वे प्राणसङ्कट की स्थिति होने पर जनपद को छोड़ दुर्गों में आश्रय ले लें और पूर्ण प्रयत्न के साथ उसकी रक्षा करें । और मन्त्री को आदेश करो कि नौसेना के सहारे जंजीरा द्वीप को अपने अधिकार में कर लें ।

इति । अल्पीयसा कालेनोपैष्यामो वयं सिंहगडदुर्गं तत्रैव प्रेषणीयानि निवेदनपत्राणीति ।

दुर्गपालः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—मम वीराग्रसरेण परास्तमपि पुनरस्मान् परिबाधेत यवनसैन्यम् ।

अङ्गरक्षकः—देव ! संनिहितो वर्षासमयः । तदुपस्थितमपि यवनसैन्यं स्वयमेव परावर्तिष्यते ।

शिवराजः—(परितो विलोक्य) एवमेतद् । यत एते—

लुलितपथिकनेत्रे पूरयित्वा रजोभिर्वसनमपहरन्तो लुण्ठकाश्चक्रवाताः ।
जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो यथेच्छंवियदभि घनभीता उत्प्लवन्ते समन्तात् ॥११

लुलितेति—जनपदपुरमार्गे यथेच्छं संभ्रमन्तः लुलिते क्लान्ते च ते पथिकनेत्रे रजोभिः रेणुभिः पूरयित्वा वसनं वस्त्रमपहरन्तो लुण्ठकाः चक्रवाताः घनभीताः वियदभि आकाशं प्रति समन्तात् उत्प्लवन्ते । मालिनीवृत्तम् । ११

उसी प्रकार अरक्षित मुगलप्रदेशों पर सेनापति को आक्रमण कर देना चाहिये । अल्पसमय के पश्चात् ही हम सिंहगडदुर्ग को प्रस्थान कर देंगे, वहीं सारी सूचनाएँ प्रेषित करें ।

दुर्गपाल—जैसी आज्ञा देव । (चला जाता है)

शिवराज—वीराग्रणी वीर द्वारा परास्त होने पर भी यवन-सेना हमें पुनः कष्ट पहुंचा सकती है ।

अङ्गरक्षक—देव, वर्षाकाल निकट है । इसलिए उपस्थित यवन-सेना स्वयं ही वापस हो जायगी ।

शिवराज—(चारों ओर देखकर) ठीक कहते हो । क्योंकि ये—

ग्राम और नगरों के मार्ग में वायु का ववण्डर (तेज हवा) स्वेच्छा पूर्वक विचरण करता बादलों से भयभीत-सा चारों ओर से उठकर आकाश की ओर प्रस्थान कर रहा है, और इस प्रकार ये बवण्डर एक लुण्ठक के समान श्रान्त पथिक की आँखों में धूल झोंककर उसके वस्त्रों का अपहरण कर रहे हैं । ११

(उर्ध्वं विलोक्य) अहो ! गगनमध्यमारुरुक्षति भगवानहर्पतिः ।
यावत्साधयामः सभागृहं राजकार्याण्यवेक्षितुम् ।

(इति सपरिजनो निष्क्रान्तः)

समाप्तोऽयमात्मसमर्पणनामा

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य गगन के मध्य में पहुँच रहे हैं ।
जव तक राजकार्यों के निरीक्षणार्थ सभा-भवन में चलूँ ।

(सेवकों के साथ जाते हैं)

आत्मसमर्पण नामक

पाँचवाँ अङ्क समाप्त ।

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति सिंहगडदुर्गप्रसादावस्थिता मन्त्रिणः)

नेताजीः—(सहर्षम्) अभिनन्द्यते प्रधानमन्त्रिपदमधिरूढ आर्यमिश्रः ।[१]

मन्त्री – वीर ! महानेषोऽनुग्रहः कृतवेदिनो महाराजस्य । परन्तु—

भोगप्रसक्तस्य महत्पदाप्तिर्यथात्मतोषाय न मे तथेयम् ।

देवेन साक्षात् परिचारकर्मणि नियुक्त इत्येव मम प्रमोदः ॥१

नेताजीः—पुण्यवतामेव खलु महत्सपर्यासौभाग्यम् ।

मन्त्री—अपि गृहीता अरक्षिता मोगलप्रदेशाः ।

नेताजीः—अथ किम् । ततश्च संगृहीतो लक्षत्रयपरिमाणो राजांशोऽद्यैव मया कोशाध्यक्षाय समर्पितः ।

छठवाँ अङ्क

(उसके पश्चात् सिंहगडदुर्ग में स्थित मंत्रियों का प्रवेश)

नेताजी—(प्रसन्नता से) प्रधान मंत्री पद पर आसीन होने के उपलक्ष्य में हम आपका स्वागत करते हैं।

मन्त्री—वीर, यह तो आभारी महाराज की महती कृपा है । परन्तु–

उच्चपद की प्राप्ति से जैसा सन्तोष भोग आदि में लिप्त व्यक्ति के लिए होता है उस प्रकार का हर्ष और आत्मसन्तोष मेरे लिए नहीं है, देव की साक्षात् सेवा करने का अवसर मिलेगा, बस यही मुझे प्रसन्नता है।१

नेताजी—महापुरुषों की सेवा का सौभाग्य पुण्यवानों को ही मिलता है।

मन्त्री—अरक्षित मुगल प्रदेशों को अधिकार में किया ?

नेताजी—हाँ । इसके अतिरिक्त लगभग तीन लाख की धनराशि कर रूप में एकत्र करके आज ही मैंने कोषाध्यक्ष को दिया है।

---

१. मोरो पन्त पिंगले नामा ।

मन्त्री—दिष्ट्या प्रतिदिनमेधते महाराजस्य कोशदण्डजः प्रभावः।

एसाजीः—तथापि नास्ति देवस्य विश्रामावसरः। एकतस्ताता-देशमनुरुध्य बीजापुरेशेन संदधानस्य पुनरन्यतः समुपस्थितो मोगलेशेन सह विग्रहः।

मन्त्री—वीर ! लोकसंग्रहार्थमाविर्भूतानामीश्वराणां स्वभाद-सिद्धः प्रवृत्तिप्रकर्षः। पश्य—

नित्यं प्रकाशयति लोकमिमं विवस्वा—
नाप्याययत्युपचितः सुधया मृगाङ्कः।
सप्तग्रहास्त्वविरतं परितो भ्रमन्ति,
जानाति नैव - विरतिं महतां प्रवृत्तिः ॥२

(नेपथ्ये) इत इतो देवः। (आकर्ण्य) अहो ! अत्रैवोपसर्पति राजकार्यव्याकुलो देवः। (ततः प्रविशति शिवराजः)

मन्त्री—भाग्य से महाराज का कोश और सैन्य-बल प्रतिदिन बढ़ रहा है।

एसाजी—फिर भी देव को विश्राम का अवसर नहीं। एक ओर पिता के आदेशानुसार बीजापुरनरेश से संधि किया है, दूसरी ओर मुगलसम्राट् से युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं।

मन्त्री—वीर, संसार के हितार्थ जन्म लेनेवाले महापुरुषों में स्वभाव से ही हमेशा विकासशील प्रवृत्ति होती है। देखो—

सूर्य सदा ही इस संसार को प्रकाशित करता रहता है, चन्द्रमा अमृत-वर्षा से जगत् को सुख-शान्ति पहुंचाता है, सप्तग्रह विना परिश्रम किये चारों ओर विचरते हैं, महान् पुरुषों की प्रवृत्ति ही विश्राम करनेवाली नहीं होती। २

(नेपथ्य में) इधर, इधर से देव। (सुनकर) अहो, राज कार्य से व्याकुल देव यहाँ ही आ रहे हैं। (उसके बाद शिवराज का प्रवेश)

मन्त्रिण:—(उत्थाय) स्वागतं देवस्य। (सर्वे शिवराजमनूपविशन्ति)

शिवराज:—पुनरपि प्रत्यासन्नो विग्रहः।

विरोधे विश्रान्ते प्रबलयवनेशस्य परितो,
नवोऽयं संप्राप्तस्तदधिकबलैर्विग्रहविधिः।
पतन्त्येते नित्यं किमिति तिमिरान्धा रिपुगणाः,
पतङ्गत्वं प्राप्ताः समरसमुदर्चिहुतवहे ।।३

मन्त्री—देव ! समाहृतोऽस्त्यचिरेण मदोद्धतेन मोगलेशेन परम्परागतराज्यशासनव्यतिक्रमः। अनेन पुनरकाण्डोपनतो भविष्यति मोगलसाम्राज्यविध्वंसः। यतः—

विरोध इति। परितः प्रबलश्चासौ यवनेशश्च तस्य विरोधे विश्रान्ते सति तस्मादधिकं बलं येषां तैर्मोगलैरिति शेषः। अयं नवो विग्रहविधिः संप्राप्तः। तिमिरान्धा मोहावृता अतएव पतङ्गत्वं प्राप्ताः रिपुगणाः समर एव समुद्गता अर्चिषो यस्य तस्मिन् हुतवहे किमिति किमर्थं नित्यं पतन्ति। शिखरिणीवृत्तम्। ३

मन्त्रिगण—(उठकर) देव का स्वागत है।

(शिवराज के पश्चात् सभी बैठते हैं)

शिवराज—मन्त्रिगण फिर युद्ध संनिकट है।

शक्तिशाली बीजापुर नरेश और हमारा विरोध चारों ओर से सर्वथा समाप्त हो चला, यह युद्ध उससे अधिक प्रवल मुगलसम्राट् से उपस्थित हो गया। ये हमारे शत्रु क्यों पतिंगे के समान युद्ध रूपी प्रज्ज्वलित अग्नि में अन्धे होकर गिर रहे हैं। ३

मन्त्री—देव, मुगलराज ने अभिमान में चूर होकर परम्परागत शासन-व्यवस्था में शीघ्र ही परिवर्तन कर दिया है। इससे अचानक मुगल-साम्राज्य का नाश हो जाएगा। क्योंकि—

सत्वोद्रेकाल्लसन्तोऽप्युदितनयगुणा न्यायमार्गप्रवृत्ता,
यान्त्युत्कर्षं नरेन्द्राः प्रकृतिहितपरा मण्डलं प्रीणयन्तः ।
अन्ये त्वेतद्विमोहाद् व्यसनपरवशा विद्विषन्तो मदान्धाः,
प्रत्यासन्नावसानाः प्रकृतिविमृदिता आशु नाशं व्रजन्ति ॥४

शिवराजः—सत्यं प्रकृतिनिबन्धनैव राष्ट्रसमृद्धिः ।

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । दिल्लीनगरात् संप्राप्तः कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

यवनतापसः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः ।

सत्वोद्रेकादिति । सत्वस्य बलस्य उद्रेकात् आधिक्यात् लसन्तः दीप्यमानाः उदिता नयगुणा येषां ते न्यायमार्गप्रवृत्ता अपि नरेन्द्राः प्रकृतिहितपराः प्रजाहिततत्पराः मण्डलं सामन्तचक्रं प्रीणयन्तः सन्तः उत्कर्षं यान्ति । एतन्मण्डलं विमोहात् व्यसनपरवशाः मदान्धाः विद्विषन्तः प्रत्यासन्नावसानाः अन्ये तु प्रकृतिविमृदिताः प्रकृतिभिः विमृदिताः परिपीडिताः सन्तः आशु नाशं व्रजन्ति । स्रग्धरावृत्तम् ।४

शक्तिसंम्पन्न, राजनीति कुशल, न्यायमार्ग पर चलनेवाले राजा तभी उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं जब अपनी प्रजा के हित का ध्यान और मण्डल को सन्तुष्ट रखते हैं । इसके प्रतिकूल वे राजा जो व्यसनों में पड़कर मोह-वश अभिमान के कारण उनसे द्रोह करते हैं, वे सदा नाश के समीप रहते हैं । और प्रजा के विद्रोह से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।४

शिवराज—यह सत्य है–राष्ट्र की समृद्धि उसकी प्रजा पर निर्भर होती है ।

द्वारपाल –(प्रवेश कर) विजय हो देव । दिल्ली नगर से कोई यवनतपस्वी आकर द्वार पर स्थित है ।

शिवराज –उसे ले आओ ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (निकल जाता है)

यवनतापस —(प्रवेश कर) महाराज की विजय हो ।

यवनतापसः—देव ! विपर्यस्तं सर्वं मोगलेशतन्त्रम् ।

न मन्यते मन्त्रिकृतार्थनिर्णयं, क्षत्रेश्वराणां कुरुतेऽवधीरणाम् ।
विद्वेष्टि सामन्तगणं त्वकारणं, स्वच्छन्दचारेण चरत्यधीश्वरः ॥५

अतो राज्यलोभाकृष्टेनानेन समन्तात् प्रवर्तितो रणोद्यमः । अत्रान्तरे तस्यं श्रवणपथमुपगतो बीजापुरसेनापतिवधोदन्तः । तदेतत्—

श्रुत्वा तव प्रसभमाक्रमणं विपक्षे,
त्रस्तो व्युदस्यति स भोगविलासलौल्यम् ।
आक्रोशति स्वजनमुद्विजते हतौजा,
आशङ्कतेऽभिपतनं तव विक्लवश्च ॥६

शिवराजः—अस्ति काचित् सविशेषा प्रवृत्तिर्मोगलेशस्य ।

यवनतापस—देव, मुगल-सम्राट् की समस्त शासन नीति में परिवर्तन हो गया है ।

मंत्रियों द्वारा किया गया निर्णय नहीं माना जाता, क्षत्रिय राजाओं का अपमान किया जाता है । सामन्त सरदारों से अकारण ही विद्वेष रखता है, इस प्रकार सम्राट् स्वतन्त्र, अपने इच्छानुसार आचरण करता है ।५

इसलिए राज्य के लोभ से उन्होंने चारों ओर से युद्ध प्रारम्भ किया है । इसी बीच बीजापुर के सेनापति का वध-समाचार उसे सुनायी पड़ा । अतः—

शत्रु पर आपके प्रबल आक्रमण का समाचार सुनकर भयभीत हो वह भोग-विलास का लोभ छोड़ चुका है, अपने ही पक्षवालों को वह कायर होने के कारण कोसता है और हतबुद्धि होकर, आपके अचानक आक्रमण के भय से काँप रहा है ।६

शिवराज—मुगलसम्राट् की किसी विशेष योजना का समाचार है ।

अतस्तेनादिष्टो दक्षिणापथाधिपो यत्त्वया कथमपि निगृह्यात्रा-नेतव्यः स सह्यमूषक इति । तदाज्ञानुरोधेन परिमितबलसमेतः स पुनानगरमधिष्ठायास्मदाक्रमणमुपकल्पयते । संप्रति च सपरिवारः स नर्तकीभिरुपासितो महाराजस्य प्रासाद एव निवसति ।

शिवराजः—अन्यतो युद्धप्रवृत्तेष्वस्मास्वनेन धूर्त्तेन प्रर्धषिताऽस्मद्राजधानी । इदानीमयं कामुकः—

देवाग्निविप्रार्चनमन्त्रपूतं, पूर्वं यदासीन्मम राजमन्दिरम् ।
करेणुकाभिर्वनराजगह्वरं, करीव तन्मे मलिनीकरोति ।।७

तदद्य तं प्रदर्शयिष्यामि मम नयपाटवम् ।

मन्त्री—देव ! सम्यक् प्रयुक्ता अप्यस्मिन् कोशबलसमृद्धे कुण्ठी-भविष्यन्ति सामादयश्चत्वार उपायाः । तत्पञ्चमोपायमन्तरेण नास्ति किमप्यत्र प्रतिविधानम् । यतः—

इस लिए उसने दक्षिण के राज्यपाल को आदेश दिया है कि वह किसी प्रकार उस सह्यपर्वत के चूहे को पकड़ कर लाये । उसकी आज्ञा के अनुसार वह अपार सेना के साथ पूना नगर में बैठकर आक्रमण करने की योजना बना रहा है । इस समय वह आपके महल में ही अपने सेवकों के साथ नर्तकियों की कला का आनन्द ले रहा है ।

शिवराज—हमारे अन्यत्र युद्ध में व्यस्त रहने के कारण इस धूर्त ने हमारी राजधानी पर आक्रमण कर दिया । अब यह कामुक—

मेरे उस राज-मन्दिर को—जो ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित वेदमंत्रों और देवाग्नि से पवित्र था, उस प्रकार दूषित कर रहा है जैसे सिंह की माँद को हथिनियों के साथ हाथी मलिन करता है । ७

तो आज मैं उसको अपना नीति-कौशल दिखाऊंगा ।

मन्त्री—देव, कोश और बल से समृद्ध शत्रु के सामने साम, दान आदि चारों उपाय भली भाँति प्रयोग करने पर भी व्यर्थ हो जायेंगे । इसलिए पञ्चम उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई युक्ति नहीं है । क्योंकि—

एकान्तेनैवाप्रधर्ष्यं वलाढ्यं, दुःसंधानं चान्तिके वतमानम्।
यत्नेनैनं विद्विषन्तं निगृह्य, स्वात्मानं वै रक्षयेन्नीतिदक्षः ॥८

अपि च सेनान्यधीनैव सर्वा समरप्रवृत्तिः । यतः—

यानासने व्यूहविधानमाक्रमं, परावरोधं समरावतारम् ।
युद्धे प्रवृत्तिं विरतिं ततः पुनर्नेता स्ववीर्यानुगुणं चिकीर्षति ॥९

तन्नेतृवधेन विरतो भविष्यति रणोद्यमः परिरक्षिताश्च भविष्यन्त्युभयतः सैनिकानां प्राणाः ।

शिवराजः—तदद्यैवानुयात्रिकच्छद्मना प्रविश्य पुनानगरमासादयिष्ये मोगलसेनानायकम् ।

भीष्मद्रोणादयः पूर्वे सेनान्यः पाण्डुनन्दनैः ।
छलेनैव हता युद्धे श्रीपतेरनुशासनात् ॥१०

नीति-कुशल राजा को चाहिए कि वह सैन्यवल से युक्त अनतिक्रमणीय, जो सन्धि के योग्य न हो, समीप उपस्थित शत्रु को अपनी रक्षा करते हुए यत्न से वश में करे ।८

और भी, युद्ध की सारी क्रियाएं सेनानायक के अधीन होती हैं । क्योंकि—

युद्ध के लिए प्रस्थान, व्यूहरचना, आक्रमण, शत्रु को रोकना, युद्धारम्भ, युद्ध में रत होना, अथवा उससे विमुख होना आदि समस्त क्रियाएं सेना-नायक अपनी सैन्य-शक्ति के अनुसार निर्दिष्ट करता है ।९

अतः सेनानी के वध से युद्ध की क्रियाएँ समाप्त हो जायेंगी और दोनों पक्षों के सैनिकों के प्राणों की भी रक्षा होगी ।

शिवराजः—तो आज ही वरयात्रा (वरात) के सदस्य के रूप में छल से पूना नगर में प्रवेश कर मुगल सेनापति को आक्रान्त करूंगा ।

पूर्व समय में पाण्डवों द्वारा श्रीकृष्ण के निर्देश से छल द्वारा हीं भीष्म, द्रोण आदि सेनापति मारे गये थे । १०

(चरं प्रति) भद्र ! उच्यतां मद्वचनाद्यवनसेनानियुक्तो महाराष्ट्रियो गुल्माध्यक्षो यस्त्वयाऽद्यैव विवाहयात्रार्थं संपादनीयं मोगलसेनापतेरनुज्ञापत्रम् । तत्रच्छद्मवेषधरा वयं भविष्यामस्तेऽनुयात्रिका इति ।

यवनतापसः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—अस्मिन् साहसोपक्रमे केवलं पञ्चविंशतिसैनिकसमेतावमात्यपदातिनायकौ भवतां मम पार्श्वानुवर्तिनौ ।

उभौ—देव ! सज्जौ स्वः ।

शिवराजः—सेनापते ! त्वं तावत्संनाहय शतघ्नीविभागम् ।

नेताजीः—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री—अत्रावशिष्यते देवस्य प्रत्यागमनप्रत्यूहनिवारणाय कापि विशिष्टा प्रयुक्तिः । तद् देवस्य परावृत्तिसमये गृहीतसंकेताः कतिपयसैनिकाः प्रज्वालयन्तु 'कात्रज' वर्त्मनि समुन्नतपादपविटपाग्रेषु

(दूत से) भद्र, मेरे कथनानुसार यवनसेना में नियुक्त मराठा सेनापति से कहो कि आज ही मुगल-सेनापति से विवाह यात्रा के लिए अनुमतिपत्र प्राप्त करें । उसमें छद्मवेशधारी हम लोग बाराती रहेंगे ।

यवनतापस—जो देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—इस साहसिक कार्य में केवल पचीस सैनिकों के साथ अमात्य और पैदल सेना के अध्यक्ष मेरे साथ रहें ।

दोनों—हम लोग तैयार हैं देव ।

शिवराज—सेनापति, तोपखाना को तुम तैयार कर लो ।

नेताजी—जो आज्ञा देव । (निकल जाता है)

मन्त्री—देव के निर्विघ्न वापस आने के लिए कोई विशिष्ट युक्ति सोचनी शेष है । अतः देव के लौटने के समय संकेत पाकर, सैनिकों में से कुछ 'कात्रज' (नामक पहाड़ी मार्ग) में ऊंचे वृक्ष की शाखाओं के अग्र

महोक्षशृङ्गेषु च निबद्धांस्तैलकर्पटान् । अनेन भ्रान्ता मोगलसैनिकास्तत्रैवानुधावेयुः ।

शिवराजः—अहो ! सुविभावितोऽयं छलप्रबन्धः एवं । भविष्यति समेषां पुनरत्र सुखोपस्थितिः । तद् भवतां प्रयाणाभिमुखौ मे प्रियसहायौ । यावदहमम्बामामन्त्र्य प्रस्थानप्रवणो भवेयम् ।

समाप्तोऽयं छलप्रबन्धनामा

षष्ठोऽङ्कः ।

●

भाग तथा बड़े-बड़े बैलों की सींगों पर तेल और कपड़ों की ज्वालाएँ प्रज्वलित कर लें । इससे मुगल सैनिक भ्रम में पड़कर उधर ही दौड़ेंगे ।

शिवराज—अहो, यह कपट-युक्ति अच्छी सोची गयी । इस प्रकार सभी सुखपूर्वक यहाँ वापस आ जायेंगे । तो मेरे प्रिय सहायकों ! प्रस्थान-के लिए तैयार हो जाओ । इस बीच मैं माता जी से मिलकर प्रस्थान-हेतु तैयार हो जाता हूँ ।

छल प्रबन्ध नामक

छठवाँ अङ्क समाप्त ।

●

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो मोगलसेनामुखाध्यक्षौ)

प्रथम :—भद्र ! सेनाधिपतौ कोऽयमसाधारणः सार्वभौमस्य पक्षपातो येनासौ स्वाम्यधिकारानपि स्वयं स्वातन्त्र्येणोपभुङ्क्ते ।

द्वितीय :—अये ! किं न जानासि प्राग्वृत्तम् ।

प्रथम :—स्वामिनियोगानुरोधेनाद्यैवाहं गान्धारेभ्योऽत्र संप्राप्तः ।

द्वितीय :—तच्छृणु सावधानः । पूर्वं दक्षिणापथाधिपत्ये स्थापितस्य सार्वभौममातुलस्य प्रासादं गाढान्धकारावृतायां रजन्यां प्रच्छन्नं प्रविश्य शिवराजेनोच्छिन्नास्तस्य भयद्रुतस्य कराङ्गुल्यः । अत्रान्तरे चाकर्ण्य तदाक्रोशं सहाय्यार्थमुपगतस्तदात्मजः शिवराजपार्श्वचरेण सैनिकेन यमालयं प्रेषितः । ततः सरभसं विनिवृत्तं शिवराजमनुद्रुतं मोगलसैन्यं कात्रजवर्त्मनि

सातवाँ अङ्क

(उसके पश्चात् मुगलसेना के दो सेनापति आते हैं)

प्रथम—भद्र ! सेनापति में सम्राट् का यह क्या असाधारण पक्षपात है कि वह सेनापति स्वामी के अधिकारों का भी स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग कर रहा है ।

द्वितीय—अरे ! क्या पूर्व वृत्तान्त नहीं जानते हो ?

प्रथम—स्वामी के आदेश से गान्धार गया था आज ही मैं यहाँ आया हूँ ।

प्रथम—फिर सावधान होकर सुनो । सबसे पहले दक्षिण प्रान्त के राज्यपाल पद पर नियुक्त सम्राट् के मामा के महल में रात्रि के घोर अन्धकार में शिवाजी छिपकर घुस गये और भयभीत होकर भागते हुए इसकी अँगुलियों को उसने काट लिया । उसके बाद चिल्लाना सुनकर सहायतार्थ आये हुए उसके पुत्र को शिवराज के अङ्गरक्षक सैनिक ने मृत्यु के घाट उतार दिया । तत्पश्चात् वेग में वापस होते शिवाजी

दीपप्रकाशमवलोक्य तत्रैव प्रयातम् । तत्रच शिवराजमदृष्ट्वा भग्नाशं परावृत्तम् । एतच्छलप्रबन्धप्रवृद्धमन्युना दक्षिणापथाधिपेन प्रत्यूषे समवरुद्धः सिंहगडदुर्गः । तदानीं दुर्गाधिरूढेन शिवराजेन शतघ्नीप्रहारैः परास्तं तदवरोधकवलम् । निशम्यैतत् खिन्नः सार्वभौमः स्वमातुलं वङ्गाधिपत्ये नियुज्य समरविजयिनं जयसिंहमहाराजं स्वाम्यधिकारेण संयोज्य शिवराजं सत्वरं निग्रहीतुमत्र प्रेषयामास । संप्रति चास्मन्महाराजनयवशंवदेन शिवराजेन प्रेषितो रघुनाथपन्तो महाराजेन सह मन्त्रयमाणस्तिष्ठति । शिवराजश्च स्वयं सन्धिनिर्णयार्थमित एवाभिवर्तते ।

प्रथम :—नास्ति किमप्यसाध्यं सर्वत्र विजयशालिनः सार्वभौमनिष्ठस्य जयसिंहमहाराजस्य । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो परिणतप्रायो हि दिवसः । यावत्साधयामः स्वनियोगपरिपालनाय । (इति निष्क्रान्तौ ।)

का पीछा करनेवाली मुगलसेना कात्रजमार्ग में दीपप्रकाश देखकर उधर ही चली गयी। और वहाँ शिवराज को न देख निराश होकर लौट आयी। इस छल-व्यवहार से क्रुद्ध होकर दक्षिण प्रदेश के राज्यपाल ने प्रातःकाल सिंहगडदुर्ग को घेर लिया । उस समय दुर्ग में स्थित शिवराज ने तोपों के प्रहारों द्वारा उसके घेरे को (अवरोधक सेना को) परास्त कर डाला । यह समाचार सुनकर खिन्न सम्राट् ने बंगाधिपति के पद पर अपने मामा को नियुक्त किया और समरविजयिनी सेना के नायक महाराज जयसिंह को नियुक्त करके शिवराज को शीघ्रातिशीघ्र पकड़ने के लिए यहाँ भेजा । संप्रति हमारे महाराज नीतिमान् शिवराज द्वारा भेजे हुए रघुनाथ पन्त महाराज के साथ मंत्रणा कर रहे हैं। और शिवराज स्वयं सन्धि का निर्णय लेने के लिए यहाँ ही उपस्थित हैं ।

प्रथम—सम्राट् में निष्ठा रखनेवाले विजयशाली महाराज जयसिंह के लिए कुछ भी असाध्य, नहीं है। (ऊपर देखकर) अहो, दिन अब प्रायः समाप्त हो रहा है। अतः अब अपने कर्तव्य-पालन का प्रयास करूँ। (दोनों चले जाते हैं)

इति विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति जयसिंहसेनानिवेशमभिप्रस्थितः सपरिजनः शिवराजः)

जगन्नाथपन्तः—(परितो विलोक्य) देव ! पश्य—

वक्रा इमे तरुलतास्तवकैः सुगुप्ता, निम्नोन्नता विकटशाद्वलशैलमार्गाः ।
आयाससाध्यकुटिलाक्रमपाटवे नः, शिक्षाविशेषमसमं वितरन्ति साक्षात् ॥१

शिवराज :—सत्यं शैलोद्देशसंक्रमणपाटवेऽतिवर्तन्ते ,मोगलसैनिकानस्मत्सैनिकगणाः । येनाल्पबला अपि वयं प्रवलपरिपन्थिनां पुरतो धर्मराज्यसंस्थापनयशोभागिनः संवृत्ताः ।

वक्रा इति—इमे तरुभिः वृक्षैः च लताभिः च स्तवकैः च सुगुप्ता आच्छादिताः निम्नाः च उन्नताः च विकटाः दुर्गमाः च शाद्वलाः बालतृणावृताः च ते शैलस्य गिरेः मार्गाः च आयासेन प्रयत्नेन साध्यः यः कुटिलः आक्रमः गमनं कुटिलानामाक्रमः अभियोगो वा तस्मिन् विषये नः अस्मभ्यमनुपमं शिक्षाविशेषं साक्षात् वितरन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् । १

विष्कम्भक समाप्त ।

उसके पश्चात् अपने सेवकों सहित शिवराज जयसिंह के सैन्यशिविर की ओर आते दिखायी पड़ते हैं ।

जगन्नाथपन्त – (चारों ओर देखकर) देव ! इधर देखिए,

पर्वत के ये ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षों, लताओं, कुंजों और घासों से ढंके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं, इससे हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तों को लाँघा तथा कुटिल शत्रुओं को जीता जा सकता है । १

शिवराज—सत्य है हमारे सैनिक पर्वतीय मार्ग पर चलने में मुगल सैनिकों से श्रेष्ठ हैं । यही कारण है जो हम अल्पशक्ति में भी प्रवल शत्रु के सामने धर्मराज्य की स्थापना में समर्थ हो रहे हैं ।१

जगन्नाथपन्त :—एवमेतत् । अपि च—

उच्चावचाचलभुवो गिरिगह्वराणि, नानालतातरुवराञ्चितकाननानि ।
उत्तुङ्गशैलशिखरस्रुतनिर्झराणि, दुर्गात्मना तव परस्य च संस्थितानि ॥२

शिवराज :—एतैर्दुर्गप्रवरैरेवाद्यावधि रक्षितमस्मत्स्वातन्त्र्यम् । परन्तु कालमहिम्ना संप्रति तानेवाहुतीकर्तुं वयं प्रवृत्ताः । तथाप्यनुकूले दैवे पुनस्त एव भविष्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्यसहायाः ।

जगन्नाथपन्तः—तत्र कः सदेहः । सर्वत्रैव सान्तरायोऽस्ति प्रकृष्ट-कलाधिगमः । परन्तु कर्तव्यनिष्ठाया अविच्युतानां भवन्ति सर्वेऽपि परिणामसुखोदया उपक्रमाः ।

शिवराज :—भद्र ! अथ कियद्दूरं वर्तते मोगलसेनानिवेशः ।

उच्चावचेति—उच्चावचाः याः अचलस्य गिरेः भुवः गिरयश्च गह्वराणि गुहाश्च, नानालताभिः तरुवरैः च अञ्चितानि ललितानि च तानि काननानि वनानि च, उत्तुङ्गशैलशिखरेभ्यः स्रुतानि च तानि निर्झराणि प्रवाहाश्च, एतानि सर्वाणि तव दुर्गात्मना दुर्गरूपेण परस्य च दुर्गात्मना अन्तरायरूपेण स्थितानि । २

जगन्नाथपन्त—ऐसा ही है । और भी,

पर्वत की ऊंची, नीची धरती, पर्वत की गुफाएं नाना प्रकार की लताओं और वृक्षों से सुशोभित वन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित होनेवाले निर्झर, ये सभी आपके लिए सुदृढ़ दुर्ग के रूप में और शत्रु के लिए वाधा स्वरूप स्थित हैं । २

शिवराज—इन्हीं श्रेष्ठ दुर्गों से आज तक हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा होती रही । परन्तु भाग्य के परिवर्तन से हम उन्हें खो देने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं । फिर भी भाग्य के अनुकूल होने पर पुनः ये हमारे लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायक होंगे ।

जगन्नाथपन्त—उसमें क्या सन्देह । उत्कृष्ट लक्ष्य की पूर्ति में सर्वत्र बाधाएं होती ही हैं । परन्तु कर्तव्यनिष्ठा से न हटनेवाले के लिए सभी प्रयास सुखदायक परिणामवाले होते हैं ।

शिवराज—भद्र, अब मुगल सेना का शिविर कितनी दूर है ।

जगन्नाथपन्त:—देव ! पश्यैतेऽस्मत्तुरंगमाः ।

संक्रम्य गुप्तान् विषमाद्रिमार्गानुत्तीर्य विस्तीर्णजलप्रवाहान् ।
प्रवातवेगेन समुत्पतन्तः, प्राप्ताः क्षणेनोच्छ्रितशैलवप्रम् ॥३

शिवराज :–उपागता वयं तावत् पुरन्दरपरिसरप्रदेशम्। (दूरं विलोक्य सविस्मयम्) अहो किं नामैतत् पश्य—

आच्छाद्येवोष्णरश्मिं निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भि:—
हृन्मर्मोद्भेदिनादैः स्तनितपटहजैर्गर्वमाघोषयद्भिः ।
धारासंपातभग्नप्रतिभटविटपिव्याकुलोपत्यकान्त
आक्रान्तो म्लेच्छसैन्यैर्जलधरनिवहैर्दुर्गराजः समन्तात् ॥४

आच्छाद्येति–निजघनततिभिरुष्णरश्मिं सूर्यं पक्षे दुर्गपालं मुरारवाजी-वीरमाच्छाद्येव ध्वान्तमन्धकारमापादयद्भिः कुर्वद्भिः स्तनितानि एव पटहाः तेभ्यः जातैः पक्षे स्तनितानि इव पटहाः तेभ्यः जातैः हृदः हृदयस्य मर्माणि भिन्दति तादृशैः नादैः गर्वमाघोषयद्भिः धारासंपातैः आसारैः पक्षे असि-धारासंपातैः भग्नाः ये प्रतिभटाः एव विटपिनः वृक्षाः तैः व्याकुलः व्यग्रः उपत्यकान्तः उपत्यकाप्रदेशः यस्य स दुर्गराजः पुरन्दरदुर्गः म्लेच्छसैन्यरूपैः जलधरनिवहैः पक्षे जलधरनिवहरूपैः म्लेच्छसैन्यैः समन्तात् आक्रान्तः । ४

जगन्नाथपन्त—देव, हमारे इन घोड़ों को देखिए।

पर्वत के विषम और गुप्त मार्गों को पारकर, बड़े-बड़े जल प्रवाहों (नदियों) को लाँघकर, वायु की गति में उड़ते हुए क्षण मात्र में उच्च पर्वत पर पहुँच गये । ३

शिवराज—तब हम लोग पुरन्दर के निकट प्रदेश में आ गये । (दूर देखकर, आश्चर्य से) अहो, यह क्या है । देखो—

हमारा श्रेष्ठ दुर्ग चारों ओर से म्लेच्छ सेना द्वारा घिर गया है । वृक्षरूपी हमारे सैनिक प्रतिपक्षियों की तलवार द्वारा काट डाले गये हैं । जैसे बादल अपनी घनी पंक्तियों से सूर्य को ढक लेते हैं, उसी प्रकार मुगलों की सेना से हमारा सेनापति (दुर्गपाल) घिरा हुआ है, बादलों की भीषण गर्जन के समान उनके नगाड़ों से निकलती गर्व से पूर्ण ध्वनि हृदय को मर्माहत कर रही है। हमारे सैनिक उसी प्रकार व्याकुल हैं जैसे बादलों से गिरती जल-धारा से वृक्ष-समूह हो जाते हैं । ४

जगन्नाथपन्त:—देव ! अवरुद्ध इव लक्ष्यते पुरन्दरदुर्गो मोगलसैनिकैः ।

शिवराज :—अरे ! किमिदं द्वैधप्रवणत्वं यवनसेनापतेः । यदेकतः संधानतन्त्रमुपन्यस्यान्यतोऽसौ विग्रहमनुजानाति ।

जगन्नाथपन्त:—देव ! कथं नु संभाव्यत एतत्क्षत्रप्रवीरस्य जयसिंहस्य । किंत्ववधीरितसेनापतिनिदेशस्य मोगलपदातिनायकस्य स्यादेतदनार्यचेष्टितम् इति । यतः—

राज्ञां प्रिया बहुमता व्यसने सहाया, विस्रम्भभूमय इमे परिपार्श्वगाश्च ।
संतर्ज्य शासनमपि स्वपतेर्मदान्धाः, क्षुद्रा अरण्यवृषवद्विचरन्त्यतन्त्राः ॥५

शिवराज :—(अश्ववेगं निरुध्य) एष कोऽपि क्षत्रियसादी सवेगमित एवाभिवर्तते ।

जगन्नाथपन्त—देव, प्रतीत होता है कि पुरन्दरदुर्ग को मुगलसैनिकों ने घेर लिया है ।

शिवराज—अरे, यवनसेनापति की दुरंगी नीति कैसी ? कि एक ओर से सन्धि करने का प्रस्ताव रखता है और दूसरी ओर से वह युद्ध का उपक्रम करता है ।

जगन्नाथपन्त—देव, क्षत्रियवीर जयसिंह के लिए यह कैसे संभव हो सकता है ? किन्तु सेनापति के निर्देश के विपरीत कदाचित् मुगलों की पैदलसेना के नायक ने यह अनुचित प्रयास किया हो । क्योंकि,

जो राजा के प्रिय होते हैं, उनके द्वारा विशेप आदर पाते हैं, उनके व्यसनों में सहायक रहते हैं, उनके विश्वासपात्र और साथ रहनेवाले होते हैं, अपने स्वामी के शासन की भी अवहेलना कर, ऐसे क्षुद्र जन ही मदान्ध-सा होकर ऐसा कार्य करते हैं, जैसे जंगली बैल स्वच्छन्द होकर विचरण करता है । ५

शिवराज—(घोड़े का वेग रोककर) यह कोई क्षत्रिय घुड़सवार तेजी से यहाँ ही आ रहा है ।

(ततः प्रविशति क्षत्रियसादी)

सादी—(ससंभ्रमम्) देव ! महदत्याहितम् । मोगलपदातिनायके-नोपजापितोऽपि स्वामिचरणयोरात्मनः परां निष्ठां प्रकटयन् शतशो मोगलसैनिकान्निहत्य वीरगतिं प्रपन्नः पुरन्दरदुर्गपालः ।

शिवराज :—हा कष्टम् । उपक्रान्तमिव लक्ष्यते दुर्दैवविचेष्टितम् ।

सादी—तस्य चालोकसाधारणविक्रमविस्मितेन मोगलनायकेन तदानीं सहसैवोदीरितं—'विश्वपतिरेवैतादृशान्वीरभटानुत्पादयितुं प्रभवति—' इति ।

शिवराज :—अहो, पराभिनन्दितविक्रमस्य निश्चितोऽनन्तलोकजयः । अये ! गच्छ त्वं पुनरपि पुरन्दरदुर्गम् ।

सादी—यथाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(उसके बाद क्षत्रिय अश्वारोही का प्रवेश)

अश्वारोही—(घबड़ाया हुआ) देव ! घोर आपत्ति । मुगलों की पैदलसेना के नायक से मेल करने पर भी, पुरन्दर दुर्ग का पालक स्वामी के चरणों में परम निष्ठावान् रहकर सैकड़ों मुगल सैनिकों का वध करके वीरगति को प्राप्त हो गया ।

शिवराज—दुःख है । मालूम होता है दुर्भाग्य ने कार्य प्रारम्भ कर दिया ।

अश्वारोही—और उसकी असाधारण वीरता से आश्चर्य में पड़कर मुगलसेनापति ने उस समय अचानक कहा—'ईश्वर ही ऐसे वीर पैदाकर सकता है ।'

शिवराज—अहो, शत्रु द्वारा जिसकी वीरता की प्रशंसा की गयी निश्चित ही वह संसार-विजयी बना । अच्छा तुम अब पुरन्दरदुर्ग जाओ ।

अश्वारोही—जैसी आज्ञा, देव । (चला जाता है)

शिवराज :—भद्र ! नास्त्यत्रावकाशो विलम्बस्य। (इति सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणाश्वारूढ उदयसिंहः)

उदयसिंहः—सह्येश्वर ! तिष्ठ तावन्मुहूर्तम्।

शिवराज :—(अश्वं निगृह्य) अहो उदयसिंहः । अप्यनामयं महाराजस्य ?

उदयसिंह :—अथ किम्। अपि च सन्दिष्टमस्ति देवेन यद्दमदादेशानुवर्तननिष्ठापुरस्सरं यदि तवागमनं स्यात्तदा सुखेनागन्तव्यम्। अन्यथा त्वित एव विनिवर्तनीयम्—इति।

शिवराज :—सर्वदा मान्य एवास्माकं क्षत्रकुलनायकस्यादेशः। तत्सत्वरमुपेमो महाराजस्य शिविरम्। (सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

शिवराज—भद्र, अब देर करने के लिए समय नहीं है। (सभी घोड़ों को हाँकते हैं)।

(तभी अचानक परदा हटाकर घोड़े पर सवार उदयसिंह का प्रवेश)

उदयसिंह—सह्यराज, क्षणभर के लिए रुकें।

शिवराज—(घोड़े को मोड़कर) अहो, उदयसिंह। महाराज कुशल हैं न ?

उदयसिंह—जी हाँ। परन्तु यह निर्देश किया है कि आप यदि उनके आदेश का पालन करें तो प्रसन्नतापूर्वक मिल सकते है, अन्यथा यहीं से लौट जायें।

शिवराज—क्षत्रियकुलनायक का आदेश हमारे लिए सर्वथा मान्य है। इसलिए महाराज के शिविर की ओर चलें। (घोड़ों को हाँकते हैं)।

उदयसिंह :—सह्येश्वर ! प्रत्यासन्नोऽस्मत्सेनानिवेशः । तदश्वादवरुह्य प्रविशामः । (इति सर्वेऽवरोहन्ति)

(ततः प्रविशत्युपकार्यावस्थितः सपरिवारो जयसिंहोरघुनाथपन्तश्च)

रघुनाथपन्तः—(दूरं विलोक्य) एष उपस्थितोऽस्मत्स्वामी शिवराजः । यावत्तं प्रत्युद्गच्छामि । (इत्युपसर्प्य) स्वागतं देवस्य । (इत्यभिनन्दति) प्रविशतु देवः सपरिवारो महाराजोपकार्याम् । (इति सपरिवारं शिवराजं प्रवेशयति)

जयसिंह :—(अभ्युत्थाय) स्वागतं सह्येश्वरस्य । (इति हस्तयोर्गृहीत्वा) ममैवार्धासनमधिष्ठातुमर्हति सह्येश्वरः । (इति स्वपार्श्वे शिवराजमुपवेशयति)

शिवराजः—महानेषोऽनुग्रहः छत्रकुलमण्डनस्य ।

उदयसिंह—सह्येश्वर, हमारा सैन्य-शिविर निकट है। इसलिए घोड़े से उतरकर चलें । (सभी घोड़े से उतरते हैं)

(उसके बाद अपने सेवकों और रघुनाथपन्त के सहित जयसिंह राज-शिविर में बैठे दिखायी पड़ते हैं)

रघुनाथपन्त—(दूर देखकर) हमारे स्वामी शिवराज यह आ रहे हैं । चलकर उनका स्वागत करूँ । (पहुँचकर) स्वागत है देव । (प्रणाम करता है) सेवकों-सहित महाराज के शिविर में प्रवेश करें । (सेवकों-सहित शिवराज को ले जाता है) ।

जयसिंह—(उठकर) सह्येश्वर का स्वागत है । (हाथों से पकड़कर) आइए मेरे अर्धासन पर बैठिए सह्येश्वर । (शिवराज को अपने बगल में बैठाता है) ।

शिवराज—क्षत्रियकुल भूषण का यह महान् अनुग्रह है ।

जयसिंहः—अप्यनामयं क्षत्रप्रवीरस्य ?

शिवराजः—राजन् ! सन्धानप्रवणेऽपि मयि कथं क्षत्रपरिमर्दान्न विरमत्येष पदातिनायकः !

जयसिंहः—सार्वभौमस्य बहुमानेनावलिप्तोऽयं त्वया स्वयमेवोपेत्य सान्त्वयितव्यः । एष प्रवीरतरो मम पितृव्यः सुभानसिंहो भविष्यति तव सहायः । तस्माऽभूल्लेशतोऽप्यत्र तवानिष्टशङ्कावकाशः । सम्प्रति प्रेषयाम्यहमुदयसिंहं युद्धविष्टम्भाय ।

शिवराजः—राजन् ! त्वद्वात्सल्यपरिगृहीतोऽहं सर्वथा प्रतिपद्ये तव हितोपदेशम् ।

जयसिंहः—पूर्वं तावद्विधीयतां स्वनाममुद्राङ्कितमेतत्सन्धिपत्रम् । (इत्यर्पयति)

शिवराजः—(वाचयति)

जयसिंह—क्षत्रियवीर का कुशल है न ?

शिवराज—राजन्, यह पैदलसेना का नायक क्षत्रियों के मर्दन से विश्राम क्यों नहीं लेता जबकि मैं शान्ति रखना चाहता हूँ ।

उदयसिंह—सम्राट् द्वारा विशेष आदर पाने के कारण यह उद्धत हो गया है । तुम स्वयं उसके पास जाकर शान्त करो । वीरश्रेष्ठ मेरे चाचा ये सुभानसिंह तुम्हारे सहायक रहेंगे । अतः अपने अनिष्ट की तनिक भी शंका न करें । संप्रति उदयसिंह को युद्ध रोकने के लिए भेजता हूँ ।

शिवराज—राजन्, तुम्हारे स्नेह से अनुगृहीत तुम्हारी सलाह सर्वथा मानता हूँ ।

जयसिंह—पहले इस सन्धि-पत्र को अपने हस्ताक्षर और मुद्रा से पूर्ण करो (देता है) ।

शिवराज—(पढ़ता है) ।

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वरसार्वभौममोगलेशचरणरचिताञ्जलिः शिवराजः—

१: स्वकीयांस्त्रयोविंशति दुर्गांश्चत्वारिंशल्लक्षांशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमस्य स्वाधीनानापादयति । स्वयं चावशिष्टान् द्वादशदुर्गांश्चतुर्लक्षांशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमशासनमनुरुध्यानुशास्ति ।

२. स्वकुमारं च सार्वभौमसेनायां पञ्चसहस्रसादिनामधिकारपदे स्थापयति ।

३. स्वयं च सार्वभौमशुश्रूषायां सर्वदा सादरो वर्तते ।

४. स्वयं च संनिहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं सार्वभौमाज्ञयोपभुनक्ति । इति । (स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय) उररीक्रियते मयैतत्संधिपत्रम् । (इत्यर्पयति)

जयसिंहः–सह्येश्वर ! परं प्रीणयसि मां तव सौजन्यातिशयेन । उदयसिंह ! उच्यतां मद्वचनात्पदातिनायको यद्युद्धव्यवसायतस्त्वं सद्यो विरमेति ।

भारतवर्ष के राजकुलों के सम्राट् सार्वभौम सम्राट् मुगलेश के चरणों में शिवराज करवद्ध प्रणाम करते हुए—

१. अपने तेईस दुर्गों और चालीस लाख के अंशवाले जनपदों को सार्वभौम सम्राट् के अधीन करता है । और स्वयं शेष बारह दुर्गों तथा चार लाख की सम्पत्तिवाले जनपदों पर सम्राट् के अधीन रहकर शासन करता है ।

२. अपने कुमार को सम्राट् की सेना में पाँच हजार अश्वारोहियों के अधिकार पद पर नियुक्त करता है ।

३. और स्वयं सार्वभौम की सेवा के लिए तैयार है ।

४. और स्वयं सार्वभौम की आज्ञा से दो पड़ोसी राज्यों से चतुर्थांश संग्रह का अधिकार रखता है । (हस्ताक्षरित और मुद्राङ्कित करके) इस संधिपत्र की शर्तें स्वीकार करता हूं । (देता है)

जयसिंह —सह्येश्वर ! तुम्हारे सौजन्य से हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं । उदयसिंह, मेरे आदेशानुसार पैदल सेना के नायक को युद्ध सम्बन्धी सभी कार्य बन्द करने के लिए कहो ।

उदयसिंहः—यथाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)

प्रतीहारः—(प्रविश्य) विजयतां देवः। एष सार्वभौमस्य संदेशहरः कोऽपि दूतो द्वारि तिष्ठति।

जयसिंहः—प्रवेशयैनम्।

प्रतीहारः—यदाज्ञापयति देवः ! (इति निष्क्रान्तः)

दूतः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः।

जयसिंहः—अप्यनामय सार्वभौमस्य !

दूतः—अथ किम्। प्रेषितमेतद्राजशासनं महार्हवस्त्राभूषणपुरःसरं सार्वभौमेण शरणमुपागते शिवराजे वितरितुम्। (इति राज—शासनादीन्यर्पयति)

जयसिंहः—(सविस्मयं स्वगतम्) अहो भवितव्यता। (वाचयित्वा) सह्येश्वर ! दिष्ट्याऽनवलोकितमप्यभिनन्द्यते संधिपत्रं सार्वभौमेण बहुमन्यसे त्वं महार्होपचारैः।

उदयसिंह—जैसी आज्ञा देव। (चला जाता है)

प्रतिहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव। सार्वभौम का सन्देशवाहक कोई दूत द्वार पर उपस्थित है।

जयसिंह ले आओ उसे।

प्रतिहार जो आज्ञा देव। (चला जाता है)

दूत—(प्रवेश कर) विजय हो महाराज।

जयसिंह—सार्वभौम कुशल हैं न ?

दूत—जी हाँ। सार्वभौम ने बहुमूल्य वस्त्राभूषण सहित यह राजाज्ञा शरणागत शिवराज को देने के लिए भेजी हैं। (राजाज्ञा आदि देता है)

जयसिंह—(आश्चर्य में पड़कर स्वयं) अहो, भाग्य ! (पढ़कर) सह्येश्वर, भाग्य से बिना देखे ही सार्वभौम ने सन्धिपत्र स्वीकार कर लिया और बहुमूल्य उपहारों से तुमको आदर दिया है।

शिवराजः—राजनीतिदक्षे, महाराजे मन्त्रिसेनापतिपदाधिरूढे सहैवोपक्रमेणार्थसिद्धिः सार्वभौमस्य ।

जयसिंहः—कः कोऽत्र भोः !

प्रतीहारः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

जयसिंहः—आराधयन्तु संगीतेन सह्येश्वरं नर्तक्यो यावदहमेनं संभावयामि महार्होपचारैः ।

प्रतीहारः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

जयसिंहः—वत्स ! शिवराज ! उत्तिष्ठ । (इति वस्त्रादीनि परिधापयति)

नर्तक्यः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः (इति संगीतमारभन्ते)

(बिहागरागेण तेवरातालेन गीयते)

सुमसुकुमार ! नयनविहार !

हृदयाधार ! यौवनसार ! प्रणयापारपारावार ! सुम० १ ।

सुमसुकुमारेति । सुमं पुष्पमिव सुकुमारः नयनयोः विहारः हृदयस्य आधारः यौवनस्य सारः प्रणयस्य अपारश्चासौ पारावारः समुद्रश्च तत्संबुद्धौ

शिवराज—राजनीति में कुशल महाराज के मन्त्री और सेनापति पद पर नियुक्त रहने से सार्वभौम क्रमानुसार हर कार्य में सफल होते हैं।

जयसिंह—कौन, कोई है ?

प्रतिहार—(प्रवेशकर) आज्ञा देव !

जयसिंह—सह्येश्वर का नर्तकियों के संगीत से मनोरंजन करायें, मैं राजकीय उपहार प्रदान करता हूं ।

प्रतिहार—ठीक है । (चला जाता है)

जयसिंह—वत्स, शिवराज उठो । (वस्त्र आदि पहिनाता है) ।

नर्तकियाँ–(प्रवेशकर) विजय हो महाराज । (संगीत प्रारम्भकरती हैं)

(विहागराग तेवराताल से गाया जाता है)

हे, कुसुम सुकुमार, आँखों को सुख देनेवाले हृदय के आधार, यौवन के सर्वस्व, प्रेम के समुद्र । १

जलदश्यामधर ! सुखधाम ! कुसुमललामचम्पकदाम ! सुम० ।२

अयि भुवनेश ! मानववेश ! रमय रमेश ! मां रसिकेश ! सुम० ।३

जयसिंहः—अनया चम्पकमालया सुबद्धं भवतु ते हृदयं मोगल-साम्राज्येन । (इति मालामर्पयति)

शिवराजः—राजन् ! भवादृशैर्भारतवीराग्रसरैः क्षुण्ण एव पन्था अस्माकं परमं शरणम् ।

जयसिंहः—अल्पीयसा कालेन नूनं भविष्यति तव सार्वभौमसमागमसौभाग्यम् । तत्र च करिष्यति ममात्मजो रामसिंहस्तव साहाय्यम् । तदानीं तवालोकसाधारणविक्रमपरितुष्टो मोगलेशो नियोजयिष्यति त्वां दक्षिणापथाधिपत्ये ।

जलदः मेघः इव श्यामः सुखस्य धाम स्थानं तत्संबुद्धौ, कुसुमानां ललामं यत् चम्पकपुष्पं तेषां दाम मालां धर स्वीकुरु इत्यर्थः । अयि भुवनेश ! रमेश ! मानववंशरसिकेश ! मां रमय । कृष्णं प्रति राधायाः प्रार्थना-रूपमिदं गेयपदम् । अश्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

वादल के समान श्याम वर्णवाले, सुखधाम, चम्पक पुष्पों की यह सुन्दर माला धारण करो । २ मनुष्य रूपधारी हे भुवनेश ! और हे रसिकों में श्रेष्ठ रमेश (भगवन्) मुझे साथ में विहार का सुख दो । ३

जयसिंह—इस चम्पकमाला की सहायता से तुम्हारा हृदय मुगल साम्राज्य से आवद्ध हो जाय । (माला पहिनाता है)

शिवराज—राजन्, आप सदृश भारतवर्ष के वीराग्रणी द्वारा अपनाया मार्ग ही हमारे लिए शरण है ।

जयसिंह—कुछ ही समय में तुमको सार्वभौम के समागम का सौभाग्य निश्चित रूप से प्राप्त होगा । वहाँ मेरा पुत्र रामसिंह तुम्हारा सहायक होगा । तव तुम्हारे असाधारण विक्रम से सन्तुष्ट मुगल सम्राट् तुम्हें दक्षिण प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त करेंगे ।

शिवराज :—महाराजस्य वचसि वर्तमानस्य ममोत्तरोत्तरमुत्कर्ष एव।

जयसिंह :—क्षत्रप्रवीर ! त्वादृशानां विक्रमशालिनां साहाय्येन समीहते सार्वभौम। साम्राज्यप्रभावं समेधयितुम् ।

शिवराज :—भवादृशैः क्षत्रेश्वरैः समृद्धे साम्राज्ये का गणना मम साहाय्यस्य । किन्तु–महाराजस्य प्रसादात् सार्वभौमसपर्याप्रसङ्गोदयेनात्मानमहं कृतिनं मन्ये ।

जयसिंह :—(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो, उपक्रान्तो निशीथसमयः । कः कोऽत्र भोः !

प्रतीहार :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

जयसिंह :–अन्तर्गृहमार्गमादेशय । (शिवराजं प्रति) एहि सह्येश्वर ! ।

प्रतीहार :—इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराज—महाराज की सलाह में रहने पर मेरा उत्तरोत्तर उत्कर्ष ही होगा ।

जयसिंह—क्षत्रियवीर, तुम सदृश पराक्रमी की सहायता से सार्वभौम साम्राज्य का प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं ।

शिवराज—आप सदृश क्षत्रिय-श्रेष्ठ द्वारा समृद्ध साम्राज्य में मेरे साहाय्य की कौन सी गिनती है । किन्तु महाराज की कृपा से सार्वभौम की सेवा का अवसर प्राप्त करके मैं स्वयं को भाग्यशाली मानता हूँ ।

जयसिंह—(ऊपर देखकर) अहो, अर्ध रात्रि-काल हो रहा है । कौन है ?

प्रतिहार—(प्रवेश कर) आज्ञा देव ।

जयसिंह—अन्तर्गृह का मार्ग दिखाओ । (शिवराज से) आओ सह्येश्वर ।

प्रतिहार—इधर-इधर से देव । (सभी घूमकर चलते हैं)

शिवराज :—(स्वगतम्) अहो कथमद्यापि साशङ्कमेव वर्तते मे मनो मोगलाधीश्वरे । यद्—

आजन्मनो जनमिमं द्विषताऽधमेन, साम्राज्यवैभवमदोद्धतमानसेन ।
स्वातन्त्र्यमन्यनृपतेरसहिष्णुना मे, संमाननं किमु कृतंप्रविलोभनार्थम् ॥६

प्रतीहारः–एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देवः सह्येश्वरश्च । (इति निष्क्रान्तः)

जयसिंह :—(प्रविश्य सुवर्णमञ्चावधिरुह्य) क्षत्रवीर ! तव सामोपचारप्रवणतयाऽतीव सन्तुष्टोऽस्मि ।

शिवराज :—राजन् ! अस्थानेऽपि शङ्काकुलं मे मनो मां मुखरयति यत्कथमलोकसाधारणविक्रमाः साक्षाद्विजयमूर्तयो भवादृशा अपि सानन्दमङ्गीकुर्वन्ति मोगलेशानुगत्वम् ।

आजन्मन इति : आजन्मनः इमं जनं मामित्यर्थः द्विषता साम्राज्यवैभवस्य मदेन उद्धतं मानसं यस्य तेन अन्यनृपतेः स्वातंत्र्यमसहिष्णुना अधमेन मे संमाननं किमु प्रविलोभनार्थं कृतं स्यात् । वसन्ततिलकावृत्तम् । ६

शिवराज—(स्वयं) अहो, क्या कारण है कि आज भी मेरा हृदय मुगल सम्राट् से शंकित ही है । जैसे,

वह जो अधम जन्म से मेरा शत्रु है, जिसका हृदय साम्राज्य के वैभव से उन्मत्त है और अन्य राजाओं की स्वतन्त्रता सहन नहीं करता, उसने मेरा इस प्रकार सम्मान कहीं, केवल लालच दिखाने के लिये किया हो ।६

प्रतिहार—यह अन्तर्गृह का द्वार है, देव और सह्येश्वर प्रवेश करें। (चला जाता है)

जयसिंह—(प्रवेशकर, स्वर्णमंच पर बैठकर) क्षत्रियवीर तुम्हारे इस समव्यवहार से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ ।

शिवराज.—राजन् अकारण भी मेरा मन शंकित होकर जानना चाहता है कि अद्वितीय पराक्रमशाली, साक्षात् विजय की मूर्ति सदृश आप भी मुगल सम्राट् की सेवा सानन्द क्यों स्वीकार कर रहे हैं ।

जयसिंह :—वत्स ! कालचक्रपरवशा हि सर्वे प्राणिनः । संप्रति हीन-गुणानां क्षत्राधिपानां गुणोत्कर्षेणारूढ़प्रतापस्य मोगलान्वयस्य सपर्यामन्तरेण न विद्यतेऽन्यदालम्बनम् । तद्यावदेते न भवन्त्यन्तराया अस्मद्धर्मानुष्ठानेषु तावत्संमाननीयाः । तथापि सांप्रतं सम्राट्पदमारूढेन मोगेलेशेन परधर्मविद्वेष-परेणोप्तमेव साम्राज्यविध्वंसबीजम् । अहो बत यद्भावि तत्केन निवार्यते । पूर्वसम्राडनुग्रहपरंपरावशीकृतैरस्माभिस्तु कृतज्ञतयाऽनुष्ठीयते भृत्यधर्मः ।

शिवराज :—राजन् ! अन्यथा खलु मे प्रत्ययः । यतः—

स्वामिनं तु निजधर्मविच्युतं. सेवकः परिहरन्न दोषभाक् ।
अग्रजं हि परदारलोलुपं व्यावृणग् गुणनिधिर्विभीषणः ॥७

स्वामिनमिति । निजधर्मविच्युतं स्वामिनं तु परिहरन् त्यजन् सेवकः दोषभाक् न भवति । हि यस्मात् गुणनिधिः विभीषणः परदारेषु लोलुपमति-त्वयेन लुब्धं अग्रजं रावणं व्यावृणक् अजहात् । रथोद्धतावृत्तम्, अर्थान्तर-न्यासोऽलङ्कारः । ७

जयसिंह—वत्स, सभी प्राणी कालचक्र के अधीन हैं । संप्रति गुणहीन हुए क्षत्रिय नरेशों के लिए, गुणोत्कर्ष के कारण प्रतापशाली हो गये मुगलों की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है । अतः जब तक कि ये हमारे धर्मानुष्ठान में हस्तक्षेप नहीं करते, संमान्य हैं । फिर भी मुगल सम्राट् ने अन्य धर्मों के साथ द्वेष करने के कारण साम्राज्य के विनाश के बीज बो दिया है । अहो ! भवितव्य कौन बदल सकता है । पूर्व सम्राटों के अनुग्रह के कारण कृतज्ञ हम अपना सेवक-धर्म निभा रहे हैं ।

शिवराज—राजन्, मैं विपरीत समझता हूँ । क्योंकि—

अपने धर्मपथ से विचलित हुए स्वामी को यदि सेवक त्याग देता है तो वह दोषभागी नहीं है । गुणों से युक्त विभीषण ने अपने बड़े भाई को जो परस्त्री-लोलुप था, त्याग दिया था । ७

जयसिंह :—अहो, क्षत्रवीर ! एवं धर्मतत्त्वख्यापनेन व्यामोहयसीव मे मनीषाम् । तथाप्यस्माकं तु पूर्वंरूपहृत एव वर्त्मनि नैसर्गिकः पक्षपातः । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो निशीथकल्पा हि रजनी । यावद्रात्रिकृत्यानि परिसमाप्य शयनमारोहावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

समाप्तोऽयं मोगलेशानुसंधाननामा

सप्तमोऽङ्कः ।

जयसिंह—अहो, क्षत्रियवीर, इस प्रकार धर्मतत्त्व की व्याख्या से तुम मेरे हृदय को भ्रम में डाल रहे हो । तथापि मैं पूर्व से अपनाए हुए मार्ग में रहने का ही पक्षपाती हूँ । (ऊपर देखकर) अहो, अर्द्धरात्रि आ गयी । रात्रि के कार्य समाप्त करके चलो शयन करें ।

(दोनों चले जाते हैं)

मोगलेशानुसंधाननामक

सातवाँ अङ्क समाप्त ।

अष्टमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति निजोपवनप्रासादावस्थितो रार्मासहः)

रार्मासह :—(स्वगतम्) अहो नानानयप्रयोगपटुनाऽपि शिवराजेन पितृन्नयवशंवदेनाभिनन्दितं मोगलेशानुसन्धानम् । तन्निदेशवर्तिना चानेनापहाय स्वमानमाराध्य च मोगलपदातिनायकं तस्मै समर्पिताः पुरन्दरप्रभृतयो दुर्गप्रवराः । स्थापितश्च निजयुवराजो मोगलसेनायामधिकारपदे । इतः पित्रैव दत्ताऽभयोऽसौ मन्त्रिविनिहितराज्यभारः सार्वभौमसमागमार्थमत्र संप्राप्तः केवलमौत्सुक्येन कालं यापयति । इतश्च निजमातुलान्याक्रन्दाक्षिप्तहृदयो मोगलेशः पूर्ववत्तस्मिन् सविशेषभावो न लक्ष्यते । निजाज्ञयैव मोगलयुवराजवद्वर्त्मनि प्रतिनिवेशं संभावितस्यास्य तु 'सामन्तसाधारणोपचारपराऽत्र

आठवाँ अङ्क

(उसके बाद अपने उपवन के महल में स्थित रामसिंह का प्रवेश)

रामसिंह—(स्वयं) अहो राजनीति के विविध प्रयोग में कुशल रहते हुए शिवराज ने नीतिमान् मेरे पिता द्वारा प्रस्तुत सन्धिपत्र का स्वागत किया । उनके आदेश का पालन करके अपने अभिमान का त्याग कर मुगलों के पदाति सेनानायक को आदर पूर्वक पुरन्दर जैसे दुर्गश्रेष्ठ को समर्पित कर दिया । अपने युवराज को मुगलसेना में अधिकार-पद पर नियुक्त कर दिया । एक ओर पिता द्वारा अभय पाकर, राज्यभार मंत्रियों को सौंप, सार्वभौम के समागम की इच्छा से उत्सुकतापूर्वक समय बिता रहा है । और दूसरी ओर अपनी मामी के करुण क्रन्दन का स्मरण कर सन्तप्त हृदय मुगलसम्राट् उसके प्रतिकूल मालूम होते हैं । सम्राट् की आज्ञा से मार्ग में मुगल युवराज की भाँति समादृत शिवराज का

सत्क्रिया केवलं संधुक्षयिष्यति निर्वाणभूयिष्ठं पूर्ववैरानलम् । अहो धिगिमाम-नवस्थितिं लोकपालानाम् । यद्—

पार्श्वस्थानुचरोपजापमुषिता न्यक्कुर्वते सुव्रतान्,
दुर्वृत्तानपि, चाटुवादविजिताः श्लिष्यन्ति प्रेम्णाधमान् ।
मिथ्योत्सेकहृता द्विषन्ति च हितान् संतर्जयन्त्यूर्जितान्,
दोलाचञ्चलचित्तवृत्तय इमे त्वाराधनीयाः कथम् ॥१

(पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रसाधनविधिमुपस्थितः सह्येश्वरः ।

पार्श्वस्थेति—पार्श्वस्थानामनुचराणामुपजापेन तत्कृतभेदेनेत्यर्थः मुषिताः अपहृताः इमे नराधिपाः सुव्रतान् न्यक्कुर्वते चाटुवादैः मिथ्यास्तुतिभिः विजिताः वशीकृताः दुर्वृत्तानधमानपि प्रेम्णा श्लिष्यन्ति तेषु विश्वसन्तीत्यर्थः मिथ्या उत्सेकेन गर्वेण हृता हितान् द्विषन्ति ऊर्जितान् बलिनश्च संतर्जयन्ति अवगणयन्ति । दोलावत् चञ्चला चित्तवृत्तिः येषां ते इमे तु कथमाराधनीयाः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

साधारण सामन्त के समान स्वागतोपचार होगा तो पहले की शत्रुता द्विगुणित होकर प्रकट हो जायगी । अहो, राजाओं के अस्थिरचित्तता को धिक्कार है । क्योंकि—

पास रहनेवाले अनुचरों की भेदनीति से प्रभावित रहने से ये गुणीजनों का अनादर करते, दुराचरण करनेवालों की चाटुकारिता के कारण उन अधमों से अनुराग रखते, (विश्वास करते) मिथ्याभिमान के प्रभाव से हितैषियों से द्रोह रखते और बलशाली की निन्दा करते हैं, ऐसे दोला के समान चञ्चल चित्तवृत्तिवालों की सेवा करना कठिन है । १

(सामने देखकर) भली-भाँति सज्जित होकर सह्येश्वर उपस्थित हैं ।

शिवराज :—(प्रविश्य) दिष्ट्याद्य भविष्यति चिरप्रार्थितः सार्वभौम-समागमः ।

रामसिंह :—अथ किम् । परन्त्वपरिचिता: सन्त्येते मोगलेश्वरा आर्यसमुदाचारस्य । तन्महाराजेनोपेक्षणीयस्तेषामाचारातिक्रमः ।

शिवराज :—कुमार ! सम्यक् परिचितोऽस्मि यवनसमुदाचारस्य ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) विजयतां कुमारः । जातः खलु सार्वभौम-सभोपासनसमयः ।

रामसिंह :—साधयामस्तावत् ।' भद्र ! आदेशय सार्वभौमप्रासाद-मार्गम् ।

द्वारपाल :—इत इतो देवौ । (सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराज :—(पुरं निर्वर्ण्य) अहो !

शिवराज—(प्रवेशकर) भाग्यवशात् आज बहुत दिनों से अभीष्ट सार्वभौम के दर्शन होंगे ।

रामसिंह—निश्चित, परन्तु ये मुगलशासक हमारे सामाजिक व्यवहार से अपरिचित हैं । इसलिए महाराज उनके व्यवहार की त्रुटियों पर ध्यान न देंगे ।

शिवराज—कुमार, मैं यवनों के सामाजिक आचाररीति से भली-भाँति परिचित हूँ ।

द्वारपाल—(प्रवेशकर) कुमार की विजय हो । सार्वभौम के सभा में उपस्थित होने का समय हो गया ।

रामसिंह—चलिए चलें । भद्र, सम्राट् के महल का मार्ग दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देव । (सभी घूमकर चलते हैं)

शिवराज—(नगर पर दृष्टि डालकर) अहो,

ललिततरुवितानैर्मण्डिता राजमार्गैः,
स्फटिकविमलभासैः सौधवासैः समृद्धा ।
यवनजवनयानैः संकुलेयं विशाला,
विविधविपणिपण्या राजते राजधानी ॥२

रामसिंह :—महाराज ! किं बहुना । साक्षाद् विलासभूमिरेषा विलासिनां मोगलराजकुलेश्वराणाम् ।

द्वारपाल :—एते संप्राप्ता वयं सार्वभौमसभामण्डपद्वारम् । तत्प्रविशतां देवौ । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सभामध्यवर्ती मयूरासनस्थः सार्वभौमः)

वीणिनौ—(वीणावाद्येन गायतः) (कर्णाटरागेण झम्पातालेन गीयते)

ललितेति—ललिताः ये तरवः तेषां वितानानि येषु तैः राजमार्गैः मण्डिता अलङ्कृता स्फटिकस्य विमलः भासः द्युतिः इव भासः येषां तैः सौधवासैः सुधया निर्मितैः मन्दिरैः समृद्धा यवनानां जवनैः वेगवद्भिः यानैः च सङ्कुला विविधाः विपणयः पण्यानि च यस्यां सा इयं विशाला राजधानी राजते ।२

सुन्दर वृक्षों के वितान से शोभित राजमार्गों से युक्त, स्फटिक की भाँति श्वेत वर्णवाले राजप्रासादों से समृद्ध मुगलों के तीव्रगामी रथों विविध बाजारों एवं विक्रेय वस्तुओं से परिपूर्ण यह विशाल राजधानी शोभित है ।२

रामसिंह—महाराज बहुत कहने से क्या । विलासप्रिय मुगल-सम्राटों की साक्षात् यह विलासभूमि है ।

द्वारपाल —यह हम लोग सार्वभौम के सभा मण्डप-द्वार पर पहुँच गये । अतः प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

(उसके बाद मयूरासन पर स्थित सभा के मध्य सार्वभौम का प्रवेश)

वीणावादक—(वीणावाद्य के साथ गाते हैं)

(कर्णाटराग झम्पाताल में गाया जाता है)

लताकुञ्जलीना ।

तृणाङ्के शयाना स्वबाहूपधाना । स्वयं वीतमाना प्रिये सावधाना ।

शुचा विह्वला ते नवीना निलीना ॥ लता० ।१

पदं ते लपन्ती वियोगे तपन्ती । मुखं स्नापयन्ती तनुं ग्लापयन्ती ।

रुजा क्षीयते कान्तहीना निलीना ॥ लता० ।२

अवस्थानमन्ते प्रियाया वरं ते । विलम्बेऽशुभं तेऽनुतापो दुरन्ते ।

क्षणं याचते नाथ ! दीना निलीना ॥ लता० ।३

लतेति । राधाप्रयुक्ताया दूत्याः कृष्णं प्रतीयमुक्तिः । हे कृष्ण लतानां कुञ्जः वितानं तत्र लीना तृणाङ्के तृणशयने शयाना स्वबाहुः उपधानं यस्याः सा स्वयमेव वीतः नष्टः मानः यस्याः सा त्वयि प्रिये सावधाना त्वन्निष्ठेत्यर्थः ते निलीना प्रच्छन्नं स्थिता नवीना नवानुरागा शुचा विरहव्यथया विह्वला अस्ति । ते तव पदं गेयं लपन्ती उच्चारयन्ती वियोगे तपन्ती मुखं स्नापयन्ती अश्रुभिः इति शेषः तनुं स्वदेहं ग्लापयन्ती क्षपयन्ती एवं निलीना कान्तहीना सा रुजा क्षीयते । ते तव प्रियायाः अन्ते समीपे अवस्थानं स्थितिः वरमुचितं विलम्बे तु ते तव अशुभमनिष्टं तस्याः दुरन्ते विनाशे सति ते अनुतापः पश्चात्तापः । हे नाथ सा दीना निलीना क्षणं क्षणमात्रमवसरं तव समागमस्येति शेषः याचते । अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

दूती कह रही है—हे कृष्ण ! लताओं के कुञ्ज में लीन (बैठी) तृणों की शय्या पर अपने बाहुओं की तकिया लगाये, अपने मान का त्याग कर अपने प्रियतम में मन को रमाये हुए, नवानुराग में (विरह-दुःख में) व्याकुल है । तुम्हारे विरह-गीतों का उच्चारण करती, वियोग में जलती आँसुओं से मुख को धोती हुई, (इस प्रकार अपने शरीर को क्षीण करती) अपनी शोभा से हीन हो रही है । तुम्हारी प्रिया के समीप तुम्हारा पहुँचना अत्यन्त उचित है, विलम्ब करने पर अशुभ की आशंका है और उसके नष्ट हो जाने पर तुम्हारे लिए पश्चात्ताप का विषय होगा । हे नाथ ! वह तुम्हारे क्षणभर के समागम की याचना करती है ।३

शिवराज :—(रामसिंहेन सह प्रविश्य संगीतमाकर्ण्य स्वगतम्) अहो, मद्वियोगेन दुरवस्थामनुभवति मम महाराष्ट्रभूमिरिति सूचितमनेन गेयपदेन ।

रामसिंह :—(शिवराजेन सह सार्वभौममुपसृत्य) विजयतां सार्वभौमः । एव सार्वभौमादेशानुवर्ती समुपस्थितः शिवराजः ।

शिवराज :—(त्रिः प्रणम्य) अनुगृह्णातु सार्वभौमः, उपहारपरिग्रहेण । (इति रत्नान्युपहरति) ।

मोगलेश :—(रामसिंहं प्रति) जसवन्तसिंहपार्श्वमेनमुपवेशय ।

रामसिंह :—यदाज्ञापयति सार्वभौमः । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज :—(अपवार्य) कुमार ! कोऽयं जसवन्तसिंहः ।

रामसिंह :—(अपवार्य) एष तु जोधपुराधीशः सार्वभौमस्य परमविश्वासभाजनम् ।

शिवराज —(रामसिंह के साथ प्रवेश और संगीत सुनकर) अहो, मेरे वियोग से दुरवस्था का अनुभव कर रही है मेरी महाराष्ट्रभूमि, इस गीत से सूचित होता है ।

रामसिंह—(शिवराज के साथ सम्राट् के पास पहुँचकर) विजय हो सम्राट् । सम्राट् के आदेश का पालन करनेवाला यह शिवराज उपस्थित है ।

शिवराज—(तीन बार प्रणाम कर) उपहार स्वीकार करके अनुगृहीत करें सम्राट् । (रत्न आदि उपहार देता है)

मोगलेश—(रामसिंह से) जसवन्तसिंह के पास इसे बैठाओ ।

रामसिंह—जो आज्ञा सम्राट् । (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(अलग) कुमार, कौन है यह जसवन्तसिंह ।

रामसिंह—(अलग) यह जोधपुरनरेश सम्राट् के परम विश्वासी व्यक्ति हैं ।

शिवराज :—(अपवार्य सरोषम्) आः किमहं मत्सरिणा मोग-लेशेनैवमपमानार्थमत्र निमन्त्रितः । सन्ति जोधपुरेशातिशायिनस्तु ममापरसामन्ताः अरे ! कोऽयमधिक्षेपः ।

रामसिंह :—(अपवार्य) प्रसीदतु महाराजः ।

मोगलेश :—(अपवार्य) अरे ! किमसौ जल्पति ।

रामसिंह :—(अपवार्य) अपरिचितजनसंमर्दः केवलं नर्दत्ययं घर्मपीडितो वनशार्दूलः ।

मोगलेश :—तत्प्रापयैनं स्वनिवेशम् ।

रामसिंह :—तथा ।

(इति शिवराजेन सह सभामण्डपाद्बहिर्निर्गत्य परिक्रामति)

शिवराज :—(साक्षेपम्) कुमार !

निमन्त्रितस्यावमतिर्ममेयं किं सार्वभौमेश्वरतानुरूपा ।
क्षुद्रोऽथवा प्राप्य महत्पदं निजं, निसर्गसिद्धं न जहाति लाघवम् ।।२

शिवराज—(अलग क्रोध में) आह, क्या मैं दुष्टहृदय ईर्ष्यालु मुगल-सम्राट् द्वारा इस अपमान के लिए निमंत्रित किया गया । जोधपुरनरेश से तो मेरे अन्य सामन्त भी बड़े हैं। ओह, यह कैसा अपमान ।

रामसिंह—(अलग) महाराज शान्त हों ।

मोगलेश—(अलग) अरे, यह क्या कहता है ?

रामसिंह—(अलग) घाम से व्याकुल यह वनराज जन-समूह से अपरिचित होने के कारण गरज रहा है ।

मोगलेश—तो इसे अपने शिविर में भेजो ।

रामसिंह—ठीक है ।

(शिवराज के साथ सभा-मण्डप के बाहर निकलकर घूमता है ।

शिवराज—(व्यंग से) कुमार, निमंत्रित करके मुझे अपमानित करना क्या यह सम्राट् के अनुरूप है ? अथवा क्षुद्र जन महान् पद प्राप्त करने पर भी अपनी स्वभाव-सुलभ क्षुद्रता नहीं छोड़ते ।२

रामसिंह :—महाराज ! कस्यापि धूर्तस्येदं विचेष्टितमिति तर्कये एते संप्राप्ता वयमस्मन्मन्दिरम् । यावत्प्रविशामः ।

(ततः प्रविशन्ति मन्दिरावस्थिताः शिवराजं प्रतिपालयन्तो भृत्याः)

भृत्याः—(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

शिवराज :—(रामसिंहेन सह प्रविश्य) दुर्दैवतो विफलीभूतोऽस्माकं मनोरथः । (इति सर्वैः सहोपविशति) ।

रामसिंहः—महाराज ! सद्य एव सिद्धिपथमारोक्ष्यति तव मनोरथः ।

शिवराजः—(साकूतम्) कुमार ! दुरवगाह्यो हि दुरात्मनां नय-प्रचारः तद्बहुमानेन प्रतार्य वशीकृता ऋजुधियः क्षत्रेश्वराः अनेन धूर्तेन क्षत्रकुलविनाशायैव इति प्रतीयते। सिद्धे कार्ये त्वेतेषां सार्वभौमनिष्ठानां भाविसपर्याफलं शङ्कास्पदमेव ।

रामसिंह :—महाराज ! मिथ्यैवैष ते वितर्कः । अचिरेण प्रकृति-

रामसिंह—महाराज, मेरी धारणा है, यह किसी धूर्त का कार्य है । यह हम लोग अपने महल को आ गए । चलें प्रवेश करें ।

(उसके पश्चात् शिवराज की प्रतीक्षा करते सेवक मन्दिर में दिखायी पड़ते हैं)

सेवकगण—(उठकर) स्वागत, देव ।

शिवराज—(रामसिंह के साथ प्रवेशकर) दुर्भाग्य से हमारा मनोरथ विफल हो गया (सब के साथ बैठ जाते हैं)

रामसिंह—महाराज ! आपका मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा ।

शिवराज—(साभिप्राय) कुमार, दुष्टों की नीति को जानना बड़ा कठिन है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, अत्यन्त आदर, सम्मान से सरलमन क्षत्रिय राजाओं को उसने वश में करके, उन्हें ही क्षत्रियों के विनाश-हेतु नेता बना दिया । परन्तु कार्य सिद्ध हो जाने पर इन सम्राट्-भक्तों की सेवा के फल में सन्देह ही है ।

रामसिंह—महाराज, यह आपकी गलत धारणा है । शीघ्र ही

मापन्नः सार्वभौमः सभाजयिष्यति त्वां यथार्होपचारविभवैः। अयमहं सार्वभौममुपेत्य पुनरपि त्वत्समागमार्थं प्रयते। इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—अहो बत महत् कष्टम्। यत्—

नानाविलासविभवैर्वशतामुपेता,
राजन्यबन्धव इमे विकृतात्मभावाः।
त्यक्त्वा निजं सपदि देशकुलाभिमानं
नष्टाः स्वयं स्वजनमाशु विनाशयन्ति ॥४

रघुनाथपन्तः—देव ! यत्सत्यम्—

क्व तुच्छभोगापहृतात्ममानाः, स्वधर्मसंमूढा उदरंभरीश्वराः।
क्व राष्ट्रसंस्थापननिश्चितव्रतो, धर्मश्रितो जीवितनिःस्पृहो भवान् ॥५

नानेति। विकृतः विकारं प्राप्तः आत्मभावः क्षत्रस्वभावः येषां ते इमे नानाविलासैः च विभवैः च वशतामुपेताः राजन्यबन्धवः नृपाधमाः सपदि निजं देशकुलाभिमानं त्यक्त्वा नष्टाः सन्तः स्वजनमाशु विनाशयन्ति। वसन्ततिलकावृत्तम्। ४

सम्राट् प्रकृति में आने पर आपका सम्मान यथोचित रूप से करेंगे। यह मैं सम्राट् के पास पहुँचकर पुनः आपके समागम का प्रयत्न करता हूँ।
(चला जाता है।)

शिवराज—ओह, महान् क्लेश का विषय है। क्योंकि—

ऐश्वर्य और भोग-विलास की विविध सामग्रियों के वशीभूत ये नीच राजागण आत्मभाव को नष्ट कर अपने देश, कुल के अभिमान को त्याग दिये हैं और इस प्रकार ये स्वयं को नष्ट करके अपने जातिवालों को नष्ट कर रहे हैं। ४

रघुनाथपन्त—देव ! वस्तुतः,

कहाँ तो तुच्छ भोग-विलासों के कारण अपने सम्मान को छोड़कर स्वधर्म से विमुख, उदर भरनेवाले स्वार्थी ये राजा और कहाँ, राष्ट्र की स्थापना के लिए दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मनिष्ठ, तदर्थ प्राणों की भी चिन्ता न करने वाले आप दोनों की तुलना नहीं है। ५

हीरोजीः—(पुरतो विलोक्य ससंभ्रमम्) हा धिक् । महदत्याहितम् ।

शिवराज :—(पुरतो विलोक्य) हा बन्दीकृताः स्मो विश्वासघातिना मोगलेशहतकेन (समन्ताद्विलोक्य) अहो समन्ततोऽवरुद्धमस्मन्मन्दिरं मोगलसैनिकैः । (निःश्वस्य) नूनं यवनदासस्य जयसिंहस्य वचसि वर्तमानेन मया स्वयमेव निमन्त्रितं प्राणसङ्कटम् ।

अस्मिन्निसर्गकुटिले वितथप्रतिज्ञे, विश्वाससमागतवतो नयविच्युतिर्मे ।
मिथ्यावलेपविवशो वरमन्त्रहीनः, सत्त्वोच्छ्रितोऽप्यरिवशं सहसा प्रयाति ॥६

रघुनाथपन्तः —देव ! सत्यं विप्रलब्धा वयं जयसिंहेन । यद्—

स्वच्छन्दगामी गिरिगह्वरालयो, रूढप्रतापैरपि दुष्प्रधर्ष्यः ।
वनेश्वरोऽनेन महाप्रलोभनैरापादितो व्याधशराग्रलक्ष्यताम् ॥७

स्वच्छन्देति । स्वच्छन्दं गच्छतीति गिरेःगह्वरमालयः यस्य रूढः प्रतापः येषां तैः अपि दुष्प्रधर्ष्यः वनेश्वरः सिंहः अनेन जयसिंहेन महाप्रलोभनैः व्याधस्य शराग्रस्य लक्ष्यतामापादितः प्रापितः । उपजातिवृत्तम् । ७

हीरोजी—(चारों ओर देखकर घबड़ाहट से) धिक्कार है। घोर आपत्ति ।

शिवराज—(सामने देखकर) हा, दुष्ट विश्वासघाती मुगल सम्राट् द्वारा हम वन्दी हो गये । चारों ओर देखकर) अहो, मुगल सैनिकों द्वारा हमारा महल चारों ओर से घिर गया । (निश्वास लेकर) यवनों के दास जयसिंह की वात मानकर मैंने स्वयं यह प्राणसंकट निमंत्रित किया है ।

स्वभावतः कुटिल और असत्यवादी इस सम्राट् पर विश्वास करके मैंने वहुत वड़ी राजनीतिक भूल की है, महान् पराक्रमशील व्यक्ति भी उचित मंत्रणा से हीन मिथ्याभिमान के वश में पड़कर सहसा शत्रु के हाथों में पड़ जाता है । ६

रघुनाथपन्त—देव, सत्यतः हम लोग जयसिंह द्वारा ठगे गये । क्योंकि—

इसने स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले, पर्वत की गुफाओं के निवासी महान् पराक्रमी द्वारा भी वश में न आनेवाले वनराज (सिंह शिवराज) को प्रलोभन देकर व्याध के वाणों का लक्ष्य बना दिया । ७

मोगलनायकः—(प्रविश्यापटीक्षेपेण) राजन् ! कुटिलराजपुरुषेभ्यस्त्वां रक्षितुं समागमान्तरावधिप्रतिषिद्धस्ते स्वतन्त्रसंचारः सार्वभौमेण।

शिवराज :—अनुग्रह एव सार्वभौमस्य। तस्यैव भूयोदर्शनार्थं मया व्यवसीयते ।

मोगलनायकः—राजन् ! साधयामि तवानामयं निवेदयितुं सार्वभौमाय। (इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्तः—नार्हति देव इदानीमात्मानमवसादयितुम् । यतः—

कथं प्रपन्नोऽस्मि नितान्तदुर्गतिमकाण्ड इत्येष वृथा वितर्कः।
आसाद्य काष्ठं जलधौ विपन्नः, प्रकल्पयेत्संतरणस्य साधनम् ॥८
तच्छीघ्रमेव चिन्त्यतां कोऽपि दुर्गसंतरणोपायः।

शिवराज :—सम्यगवधारितमोगलेशस्वभावेन मया प्रागेवोप-

मोगलनायक—(सहसा प्रवेशकर) राजन्, कुटिल राजपुरुषों से आपके रक्षणार्थ, अपने समागम की अवधि तक आपका स्वेच्छापूर्वक विचरण सम्राट् ने निषिद्ध कर दिया है।

शिवराज—यह सम्राट् का अनुग्रह है। मैं उन्हीं के पुनः दर्शनार्थ प्रयत्न कर रहा हूँ।

मोगलनायक—राजन् ! मैं आपकी कुशलता का समाचार सम्राट् को जाकर देता हूँ। (चला जाता है)

रघुनाथपन्त—देव, अब आपको चिन्तित होना उचित नहीं है क्योंकि—

अचानक हम कैसे इस दुर्गति को प्राप्त हो गये यह सोचना व्यर्थ है, समुद्र में डूबता हुआ व्यक्ति काष्ठ के सहारे तैरने का प्रयास करता है। ८
अतः शीघ्र ही इस विपत्ति से मुक्त होने के लिए कोई उपाय सोचिए।

शिवराज—मुगलसम्राट् के स्वभाव से परिचित होने के कारण

कल्पितः प्रयाणप्रबन्धः। तच्छृणुत सर्वे सावधानाः । प्रथमं तावदस्मदागमनोत्सवोपायनमिषेण स्कन्धेनोह्यन्तां मिष्टपदार्थपरिपूर्णाः बृहत्करण्डाः प्रतिपरिचितक्षत्रकुलमन्दिरम् । समवलोकितेषु च केषुचित्करण्डेषु नष्टाशङ्का भविष्यन्ति मोगलाधिकृताः । अनन्तरञ्च निलीयैकस्मिन् करण्डे साधयिष्यामि सात्मजस्य मम निर्गमम् । भवद्भिश्च सर्वैर्नानामिषैर्निर्गत्यावां प्रयागमार्गान्तराले प्रतिपालनीयौ । एष हीरीजीरात्मानं रोगाक्रान्तशिवराजं ख्यापयन् सानुचरो भ्रामयिष्यत्यवरोधकगणमाप्रदोषागमम् । ततस्तेनाऽपि सानुचरेण संकेतस्थानमभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च नानाछद्मवेषधरा वयं सुखेन प्राप्स्यामोऽस्मत्सह्यप्रदेशम् । इति ।

रघुनाथपन्तः—देव ! सम्यगुपकल्पितोऽयं प्रयाणप्रबन्धः । तदपेक्षितार्थक्रयाय प्रतिष्ठतामापणमस्मद्द्रव्यपालः ।

अपनी रक्षा का उपाय मैंने सोच लिया है । सभी सावधानी से सुनो । सबसे पहले मिठाई से पूर्ण बड़ी-बड़ीं टोकरियाँ परिचित क्षत्रियों के घर हमारे आगमनोत्सव के उपहार के बहाने कन्धों पर ढोकर ले जायी जायें । मुगल अधिकारी कुछ टोकरियों का निरीक्षण करने के बाद विश्वास कर लेंगे । उसके पश्चात् एक टोकरी में मैं पुत्र-सहित छिपकर निकल जाऊंगा । अन्य सभी लोग भिन्न-भिन्न बहानों से निकलकर प्रयाग के मार्ग में मेरी प्रतीक्षा करें । यह हीरोजी स्वयं शिवराज के रूप में रोगाक्रान्त बताकर सेवकों-सहित रात्रि होने तक अवरोधकों को भ्रम में रखेगा । फिर उसके बाद वह भी सेवक के साथ संकेत-स्थान को पहुंच चलेगा । और उसके बाद विभिन्न वेशों को धारण किये हुए हमलोग सुख-पूर्वक सह्यप्रदेश में पहुंच जायेंगे ।

रघुनाथपन्त—देव, अपनी रक्षा के लिए यह उपाय आपने ठीक सोचा । तो हमारे कोषाध्यक्ष आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिए बाजार जायें ।

द्रव्यपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्तः—अहं तावत्साधयामि रार्मासहमन्दिरम् । (इति निष्क्रान्तः)

मोगलनायकः—(प्रविश्य) राजन् ! निवेदितं तवानामयं सार्वभौमाय ।

शिवराज :—संप्रति तु प्रबलोदरशूलपीडितस्य नास्ति मे स्वास्थ्य-लेशः । सुखप्रसुप्तस्य तु कदाचिद् भविष्यति मे वेदनानिग्रहः ।

मोगलनायकः—अप्युपस्थापयामि राजवैद्यम् ।

शिवराजः—आनिशीथं सुखशयनेन यदि न निरोत्स्यते मे वेदना-प्रकर्षस्तदानीमेव भविष्यति राजवैद्येन प्रयोजनम् ।

मोगलनायकः—साधु । (इति निष्क्रान्तः)

द्रव्यपालः—(प्रविश्य) देव ! क्रीता एते मिष्ठान्नपूर्णाः पञ्चविंशतिः करण्डाः ।

शिवराजः—अये ! क्रमेणास्मदनुचराधिष्ठितान् मन्दं वाहयैतान् ।

द्रव्यपाल—ठीक, जो आज्ञा (जाता है ।)

रघुनाथपन्त—मैं रामसिंह के महल को जाता हूँ । (चला जाता है)

मोगलनायक—(प्रवेशकर) राजन् ! सम्राट् से आपके सुस्वास्थ्य के विषय में निवेदन कर दिया ।

शिवराज—इस समय प्रवल उदरशूल की पीड़ा से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है । कदाचित् गाढ़ी निद्रा के बाद पीड़ा कुछ शान्त होगी ।

मोगलनायक—क्या राजवैद्य को वुलाऊँ ।

शिवराज—अर्ध रात्रितक गहरी निद्रा में सोने के वाद भी यदि मेरी पीड़ा शान्त न होगी तभी राजवैद्य की आवश्यकता पड़ेगी ।

मोगलनायक—ठीक है । (चला जाता है ।)

द्रव्यपाल—(प्रवेशकर) देव, मिठाइयों से पूर्ण ये पचीस टोकरियाँ खरीद लीं ।

शिवराज—क्रम से एक-एक करके मेरे अनुचरों द्वारा इनको निकलवाओ ।

द्रव्यपालः—तथा। (इति यथोक्तं कुरुते)

हीरोजीः—(पुरतो विलोक्य) देव ! परीक्ष्य पञ्च करण्डान् विरतो

मोगलनायकः—तदनयोः करण्डयोर्निलीनौ भवतां देवः कुमारश्च।

उभौ—तथा। (इति निलीयेते)

हीरोजीः—(क्रमेण करण्डान् वाहयित्वा पुरतो विलोक्य) दिष्ट्या कुमारेण सह निर्विघ्नं निष्क्रान्तो देवः। यावदहं छद्मवेषधरो भूत्वा शयनमारोहामि। (इति तथा कुरुते)

मोगलनायकः—(प्रविश्य) अपि लक्ष्यते वेदनापकर्षः।

अनुचरः—आर्य ! इदानीमेव सुखं प्रवृत्ता बलवदुदरशूलपीडितस्य देवस्य निद्रा। तन्नार्हत्यार्यो वचनमात्रेणापि निद्राभङ्गं विधातुम्। स्वयमेवाहमार्याय निवेदयिष्यामि सुखोत्थितस्य तस्य कुशलवृत्तान्तम्।

द्रव्यपाल— जैसी आज्ञा। (कथनानुसार कार्य करता है)

हीरोजी—(सामने देखकर) देव, पाँच टोकरियों का परीक्षण करके मुगल अधिकारी परीक्षण बन्द कर दिये। इसलिए अब आप और कुमार इन टोकरियों में छिप जायँ।

दोनों—ठीक है। (छिप जाते हैं)

हीरोजी—(क्रमानुसार टोकरियाँ निकलवा, सामने देखकर) भाग्य से कुमार के साथ निर्विघ्नरूप से देव निकल गए। मैं अब छद्मवेश में शयन करूँ। (उस प्रकार करता है)

मोगलनायक—(प्रवेशकर) क्या पीड़ा कम हुई ?

अनुचर—अत्यधिक उदरशूल से पीड़ित देव को अभी ही निद्रा आयी है। अतः शब्द मात्र से भी आर्य की निद्रा भंग करना उचित नहीं है। मैं स्वयं उनकी कुशलता का समाचार उनके शयनोपरान्त उठने पर आपको दूंगा।

मोगलनायकः—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

हीरोजीः—एतावता कालेन समुल्लङ्घितः स्यान्नगरसीमान्तो देवेन। तदावामपि तावत्प्रतिष्ठावहे। (इतिच्छद्मवेषं परित्यज्य सानुचरो निष्क्रान्तः)

मोगलनायकः—(प्रविश्य स्वगतम्) अहो, कथमयमेकाकी गाढं स्वपिति। क्व गता अस्यानुचराः। (प्रकाशम्) कः कोऽत्र भोः! (पुनस्तारस्वरेण) कः कोऽत्र भोः!

वृद्धसैनिकः—(प्रविश्य) आज्ञापयत्वार्यः।

मोगलनायकः—अरे! पश्य किमेष विगतचेतन इव लक्ष्यते शयनगतः शिवराजः। न च दृश्यते कोऽप्यस्यानुचरः।

सैनिकः-(शयनमुपसृत्य वस्त्राण्युद्धृत्य ससंभ्रमम्) आर्य! क्व शिवराजः। एतानि त्वस्य वसनान्येव।

मोगलनायकः—(ससंभ्रमसाध्वसं तारस्वरेण) हा हताः स्म।

मोगलनायक—ठीक है। (चला जाता है)

हीरोजी—इतने समय में देव नगर की सीमा पार कर चुके होंगे। तो अब हमलोग भी प्रस्थान करें। (छद्मवेश छोड़कर सेवकसहित जाता है।)

मोगलनायक—(प्रवेशकर स्वगत) अहो, यह अकेले गहरे नींद में क्यों सो रहा है। इसके अनुचर कहाँ गये? (प्रकट) कौन है? पुनः उच्च स्वर में कौन! कोई है?

वृद्धसैनिक—(प्रवेशकर) आज्ञा दें आर्य!

मोगलनायक—अरे देखो शिवराज निष्प्राण-सा शयन स्थान पर प्रतीत होता है? और उसके कोई सेवक भी नहीं दिखायी पड़ते।

सैनिक—(शयन स्थान तक पहुँच, वस्त्रों को हटाकर, घबड़ाहट से) आर्य शिवराज कहाँ हैं? ये तो केवल उसके वस्त्र हैं।

मोगलनायक—(घबड़ाकर, चौकन्ना सा तीव्र स्वर में) हा मारे गये।

(नेपथ्ये)

आर्य ! मा भैषीः संनिहिताः स्मः उद्धृतकृपाणाः ।

सैनिकाः—(प्रविश्य खड्गात्युद्यम्य) आर्य ! दर्शय । क्व सन्ति ते प्राणद्रुहः ।

मोगलनायकः—(सरोषम्) रे जाल्मा ! भवन्तः एव मे प्राणद्रुहः । क्वास्ति शिवराजः ।

सैनिकाः—आर्य ! भवेदत्र कुत्रापि प्रच्छन्नः । (इति समन्तादन्विष्यन्ति)

मोगलनायकः—(ससंभ्रमम्) अरे । निपुणमवेक्षध्वम् ।

सैनिकाः—आर्य ! न लभ्यतेऽसौ कितवः ।

प्रथमः—असौ दानवस्तु स्वमायया तिरोहितो भवेत् ।

द्वितीयः—अरे ! कदाचिद्वियन्मार्गेणोद्गतः स्यात् ।

तृतीयः—मूढ ! भूगर्भमार्गेणैव संभवत्यस्य पलायनम् ।

(नेपथ्य में)

आर्य ! भय न करें । हम लोग तलवार लिए तैयार हैं ।

सैनिकगण – (प्रवेशकर और तलवार निकाले हुए) आर्य दिखायें । आपके प्राणद्रोही कहाँ हैं ?

मोगलनायक—(क्रोध से) अरे, वाचालों, आप सब ही हमारे प्राणद्रोही हैं । शिवराज कहाँ है ?

सैनिकगण—आर्य, यहीं कहीं छिपे होंगे । (चारों ओर ढूंढ़ते हैं)

मोगलनायक—(घबड़ाहट में) अरे सावधानी से देखो ।

सैनिकगण—आर्य, नहीं मिलता वह धूर्त ।

प्रथम—यह राक्षस अपनी जादू द्वारा गायब हो गया होगा ।

द्वितीय—अरे, कदाचित् वह आकाशमार्ग में चला गया ।

तृतीय—मूढ़, उसका भाग जाना भूगर्भ मार्ग से ही सम्भव है ।

मोगलनायकः—(सरोषम्) अरे अनभिजाताः ! नायं वितर्कावसरः। कुतोऽपि निगृह्यानयन्तु तं सार्वभौमवन्दिनं मत्समक्षम्।

(सर्वे पुनरपि मृगयन्ते)

वृद्धसैनिकः—(नायकमुपसृत्य) आर्य ! वृथाऽयं, कोलाहलः। स धूर्तं कथमपि प्रच्छन्नं पलायित इति तु सिद्धम्। तदविलम्बेनैव सार्वभौमं गृहीतार्थं कुर्मः।

मोगलनायकः—तथा। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं प्रयाणप्रबन्धनामा

अष्टमोऽङ्कः।

●

मोगलनायक—(क्रोध से) अरे नीचों, वितर्क का अवसर नहीं है। कहीं से भी, सम्राट् के उस वन्दी को पकड़कर मेरे सामने ले आओ।

[सभी पुनः ढूंढ़ते हैं]

वृद्धसैनिक—(नायक के पास पहुँचकर) आर्य, यह कोलाहल व्यर्थ है। वह धूर्त किसी भी प्रकार छिपकर भाग गया, यह सिद्ध है। अतः शीघ्र ही सम्राट् को इसकी सूचना दी जाय।

मोगलनायक—ठीक। (सभी चले जाते हैं)

प्रयाणप्रबन्धनामक

आठवाँ अङ्क समाप्त।

●

नवमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता राजमाता)

राजमाता—(स्वगतम्) श्रुतं मया चारेभ्यो यत्प्रतार्य मोगलाधिकृतान्, देशाद्देशान्तरं पर्यटन् संप्राप्तो वत्सः करवीरक्षेत्रम्। तदचिरेणात्र भविष्यति तस्य सुखागमनम्। अत आज्ञप्तो मया प्रधानमन्त्री सह्यदुर्गलङ्घनाय। येनोपस्थिते वत्से शीघ्रं संपादितो भवेत्साम्राज्याभिषेकमहोत्सवः।

कञ्चुकी—(प्रविश्य) एष राजकार्यव्याकुलः प्रधानमन्त्री द्वारि तिष्ठति।

राजमाता—प्रवेशयैनम्।

नवाँ अङ्क

(उसके पश्चात् अन्तर्गृह में स्थित राजमाता का प्रवेश)

राजमाता—(स्वगत) गुप्तचरों से सूचना मिली है कि मुगल अधिकारियों को धोखा देते हुए देश देशान्तर का भ्रमण कर, मेरा पुत्र करवीर क्षेत्र में पहुंच गया है। इसलिए शीघ्र ही वह सुख-पूर्वक यहाँ आ जायगा। अतः प्रधानमंत्री को मैंने आदेश दिया है कि सह्यदुर्ग पर अधिकार कर लें। जिससे पुत्र के यहां आगमन पर शीघ्र ही साम्राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न हो जाय।

कंचुकी—(प्रवेश कर) राज्य-कार्यों से व्याकुल प्रधानमंत्री द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजमाता—उन्हें आने दो।

कञ्चुकी—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

प्रधानमन्त्री—(प्रविश्य) अम्ब ! त्वदादेशानुरोधेन मयात्मसात्कृताः पञ्चषाः सह्यदुर्गाः ।

राजमाता—मन्त्रिवर्य ! प्रतिनन्दामि तव युद्धपाटवम् । अथोपलब्धा काप्यभिनवा प्रवृत्तिर्वत्सस्य ।

प्रधानमन्त्री—अद्यावधि तु नास्ति श्रुतिगोचरा कापि देवस्याभिनवा प्रवृत्तिः । सम्प्रति सभागृहमुपेत्य जानामि देशान्तरप्रतिपत्तिम् । (इति निष्क्रान्तः)

कञ्चुकी—(प्रविश्य) एतेऽत्रभवतीं द्रष्टुकामाः यतयो द्वारि तिष्ठन्ति ।

राजमाता—प्रवेशयैतान् ।

कञ्चुकी—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

कंचुकी—ठीक है । (चला जाता है)

प्रधानमन्त्री—(प्रवेशकर) अम्ब, आपके आदेशानुसार मैंने पाँच-छह सह्यदुर्गों को अधिकार में कर लिया है ।

राजमाता—मन्त्रिश्रेष्ठ ! तुम्हारी युद्धकुशलता सराहनीय है । पुत्र के किसी नये समाचार की कोई सूचना मिली है ।

प्रधानमन्त्री—इस समय तक तो देव का कोई नया समाचार नहीं सुनायी पड़ा । सभागृह में चलकर देशान्तर के समाचार मालूम करता हूँ । (चला जाता है) ।

कंचुकी—(प्रवेशकर) आपके दर्शन की इच्छा से कुछ साधु द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

राजमाता—उन्हें बुलाओ ।

कंचुकी—ठीक । (चला जाता है) ।

यतयः—(प्रविश्य) वर्धतां प्रार्थितफलाधिगमेन राजमाता।

राजमाता—(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः। दिष्ट्याद्य पवित्रीकृतोऽयमुद्देशो भगवतां सान्निध्येन। (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा स्वगतम्) अपि नाम लभेय मम वत्सस्य प्रवृत्तिम्।

प्रधानयतिः—अम्ब! तीर्थयात्राप्रसङ्गेनानीतं मयाऽभिषेकार्थमेतद्-गङ्गोदकम्।

राजमाता—(प्रधानयतिं निर्वर्ण्य सविस्मयं स्वगतम्) अहो केनचिदंशेन संवदत्यस्य मुखच्छविर्मम वत्सस्य मुखच्छविना।

प्रधानयतिः—तद्गृहाणैतद्। (इत्युपसृत्य कलशमर्पयति)।

राजमाता—महानेषोऽनुग्रहः। (इति गृह्णाति) अपि ज्ञायते क्वापि मम वत्सस्य प्रवृत्तिः।

प्रधानयतिः—अम्ब! नातिदूरं वर्तते तवात्मजः। (इति यतिवे-

साधुगण—(प्रवेशकर) राजमाता अभीष्टफल की प्राप्ति से सम्पन्न हों।

राजमाता—(विनम्रतापूर्वक) अनुगृहीत हूँ। भाग्य से आज यह क्षेत्र आप सबके आगमन से पवित्र हो गया। (बायीं आँख के फड़कने का अनुभव करके स्वयं) क्या पुत्र के कुछ समाचार सुन सकती हूँ।

मुख्यसाधु—अम्ब, तीर्थ-यात्रा के प्रसङ्ग में (तीर्थस्थानों से) मैं यह गङ्गाजल अभिषेक के निमित्त ले आया हूँ।

राजमाता—(प्रधान साधु को भलीभाँति देखकर, आश्चर्यचकित हो स्वयं) अहो, इस साधु की मुखाकृति मेरे पुत्र की मुखाकृति से कुछ समानता रखती है।

मुख्यसाधु—इसे ग्रहण कर लें। (पास पहुंचकर कलश देता है)

राजमाता—महान् अनुग्रह है यह। (ग्रहण करती है) क्या पुत्र के विषय में कुछ ज्ञात है।

मुख्यसाधु—अम्ब, आपका पुत्र बहुत दूर नहीं है। (साधुवेश को

षमपनीय) एष सुखप्रत्यागतः शिवराजोऽभिवादयते । (इति पादयोः पतति ।)

राजमाता—(सविस्मयम्) अहो वत्स ! शिवराजः । न खलु मयाऽभिज्ञातोऽसि । (सानन्दाश्रु हस्तयोर्गृहीत्वा) वत्स ! उत्तिष्ठ । दिष्ट्याद्योज्जीवितास्मि ।

मुक्तस्य दुष्टयवनाधिपपाशबन्धात्,
प्रत्यागतस्य पुरतो मम संस्थितस्य ।
एतत्तवाननमुपोढनवप्रसादं
मां तर्पयत्यतितरां तरुणेन्दुकान्तम् ।।१

वत्स ! पूर्वमेव मयादिष्टेन मन्त्रिणा स्वायत्तीकृताश्चाकणसह्यदुर्गाः । तद्दण्डनीतिमेव समाश्रित्य विजित्य च महाराष्ट्रप्रदेशं संपादय तव साम्राज्याभिषेकमङ्गलम् ।

त्यागकर) सुखपूर्वक वापस आया हुआ यह शिवराज प्रणाम करता है । (चरणों पर गिरता है) ।

राजमाता—(विस्मय में पड़कर) अहो वत्स शिवराज ! निश्चित ही मैं पहिचान न सकी । (आनन्दाश्रु ओं सहित हाथों से पकड़कर) पुत्र उठो । भाग्य से पुनः जीवित हुई ।

दुष्ट यवन सम्राट् के पाशबन्धन से छूटकर वापस आए हुए मेरे सामने खड़े तुम्हारा यह मुख नवचन्द्रमा के सदृश, नयी छवि प्राप्त कर लेने के कारण मुझे अत्यन्त आनन्द पहुँचा रहा है । १

वत्स ! मेरे आदेशानुसार पहले से ही मन्त्री ने चाकण आदि दुर्गों को अधिकार में कर लिया ।अतएव दण्डनीति का सहारा लेकर, महाराष्ट्र प्रदेश को जीतो और अपना साम्राज्याभिषेक पूर्ण करो ।

शिवराजः—अम्ब ! त्वदादेशानुरोधेनाविलम्बेनैव निर्वर्तयिष्येऽभिषेकमङ्गलम् । अतः परं च स्वातन्त्र्येणैव प्रवर्तिष्यते मम राज्यतन्त्रम् । कः कोऽत्र भोः !

कञ्चुकी—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः) एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणः)

मन्त्रिणः—(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

शिवराजः—भवान्यनुग्रहेण खलु रक्षितोऽस्मि ।

मन्त्रिणः—देव ! अद्य खल्वस्माकं महाराष्ट्रस्य च सुप्रभातम् ।

वैतालिकः—(नेपथ्ये) विजयतां देवः ।

शिवराज—अम्ब ! आपके आदेशानुसार शीघ्र ही अभिषेक का कार्य पूर्ण होगा । और मेरा राज्यशासन स्वाधीन होकर चलेगा । कौन, कोई है ?

कंचुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा दें देव !

शिवराज—मन्त्रणागृह का मार्ग दिखाओ ।

कंचुकी—इधर, इधर से देव । (दोनों घूमते हैं) यह है मन्त्रणाकक्ष का द्वार । (चला जाता है)

(उसके बाद मन्त्रणागृह में स्थित मन्त्रियों का प्रवेश)

मन्त्रिगण—(उठकर) स्वागत देव !

शिवराज—भवानी के अनुग्रह से मेरी रक्षा हुई ।

मन्त्रिगण—देव ! आज हमारे और महाराष्ट्र के लिए सुप्रभात का अवसर है ।

वैतालिकगण—(नेपथ्य में) विजय हो देव ।

कुटिलयवनपाशान्नीतियोगापसृप्तो,
द्युमणिरिव समन्ताद्राहुणा ग्रस्तमुक्तः ।
चिरविरहविपन्नान् रञ्जयन् सह्यदुर्गा—
नुपचिततनवतेजा राजसे राजसूर्य ! ॥२

(अष्टोत्तरशतशतघ्नीस्वनोपक्रमः)

शिवराजः—मन्त्रिणः परमं प्रीणयति मां भवतां सह्यजनानां च राजनिष्ठा ।

प्रतीहारः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कोऽपि वैदेशिको द्वारि संप्राप्तः ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

प्रतीहारः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

वैदेशिकः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कृतघ्नेन मोगलेशेन त्वमसि शिवराजपक्षपातीति निर्भर्त्स्य स्वाधिकारात्प्रभ्रंशितो महाप्रतापो

कुटिलेति । कुटिलश्चासौ यवनः मोगलेशश्च तस्य पाशात् नीतियोगेन अपसृप्तः समन्तात् राहुणा आदौ ग्रस्तः पश्चात् मुक्तः ग्रस्तमुक्तः द्युमणिः सूर्य इव चिरविरहेण विपन्नान् विपदा अभिभूतान् सह्यदुर्गान् रञ्जयन् उपचितं नवं तेजः येन स त्वं हे राजसूर्य ! राजसे । मालिनीवृत्तम् । २

राहु के सदृश चारों ओर से यवनों के नीतिपाश द्वारा सूर्य के समान ग्रस्त होकर, अब उससे मुक्त यह राजसूर्य (राजाओं में सूर्य के समान) नवीन तेज (शौर्य) से युक्त हो चिरकाल से वियुक्त सह्यदुर्गों को आनन्दित कर रहे हैं । २ (एक सौ आठ तोपों का स्वर)

शिवराज—मन्त्रिगण आप लोगों और सह्य—निवासियों की राजनिष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न हूं ।

प्रतिहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव । कोई विदेशी द्वार पर आया है ।

शिवराज—उसे ले आओ ।

प्रतिहार—ठीक है । (चला जाता है)

वैदेशिक—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । महाप्रतापी जयसिंह को, कृतघ्न मुगल सम्राट् ने उसके विरुद्ध यह दोषारोपण कर कि तुम शिवराज

जयसिंहः । ततश्च मोगलराजधानीं विनिवृत्तोऽसौ दुर्मनायमानो मार्ग एव—'आसादितं मया कृतघ्नसपर्यया मर्मविदारणं फलम् । यद्—

आजन्मनः परिचरन् यमनन्यभक्तिः,
स्वज्ञातिजानपि भटाननयं विनाशम् ।
सोऽयं वलीपलितविक्लवदेहयष्टेः,
संतर्जनेन मम हा हृदयं भिनत्ति ॥३

हा विश्वनाथ ! देहि मे शरणम्—'इत्याक्रुश्य प्राणानजहात् । तदनन्तरं च सार्वभौमाज्ञया तत्पदमारूढो मोगलयुवराजसहायो जसवन्तसिंहः ।

शिवराजः (निःश्वस्य) विक्रमशालिनामपि नयमार्गविच्युतानामपरिहार्य एवेदृशो दुर्विपाकः ।

प्रधानमन्त्री—देव ! नूनं शोचनीयामवस्थामापादितोऽयं प्रवीरो मोगलेशहतकेन ।

के पक्षपाती हो, उसके अधिकार से च्युत कर दिया है। उसके बाद मुगलराजधानी की ओर जाते हुए खिन्न मन वह रास्ते में ही—कृतघ्न की सेवा कर मैंने यह मर्मभेदी फल प्राप्त किया है।

आजन्म मैंने जिस सम्राट् की एकनिष्ठ भाव से सेवा करते हुए अपने जातीयजनों वीरों तक का नाश कर डाला। वही, इस वृद्ध शरीरवाले की भर्त्सना से मेरा हृदय विदीर्ण कर रहा है। ३

हे विश्वनाथ ! मुझे शरण दें। इस प्रकार स्वयं को कोसता, उसने प्राणों को त्याग दिया। उसके बाद सम्राट् की आज्ञा से मुगलयुवराज का सहायक जसवन्तसिंह उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर) विक्रमशाली पुरुषों के लिए भी नीतिमार्ग छोड़ देने पर इस प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं।

प्रधानमन्त्री—देव, निश्चित ही दुष्ट मुगलसम्राट् ने उस वीर की दशा शोचनीय बना दी।

शिवराजः—संप्रति खलु गान्धाराणां नियमने व्यापृतोऽस्ति मोगलेशः। तदस्माभिर्महार्हरत्नोपायनैः समाराध्य दक्षिणापथाधिपं सद्य एवात्मसात्कर्तव्या महाराष्ट्रभूः।

प्रधानमन्त्री—देवस्योपस्थितेः पूर्वमेव मया स्वायत्तीकृताश्चाकण-प्रभृतयः सह्यदुर्गाः। अवशिष्टानां दुर्गाणां कल्याणप्रान्तस्य चाक्रमणाय प्रस्थापिता मया सेनानिवहाः। परंतूदयभाणपालितः सिंहगडदुर्गः कथमा-क्रमणीय इत्यतीवोत्कण्ठितोऽस्मि।

शिवराजः—(विचिन्त्य) न कोऽप्यमात्यमन्तरेणैतत् कार्यं साधयितुं क्षमोऽस्ति। संप्रति तु स्वात्मजस्योद्वाहकर्मणि व्यग्रोऽसौ नार्हति प्रयाणानुशासनम्।

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण तानाजीः)

शिवराज—संप्रति मुगलसम्राट् गान्धारों को नियंत्रित करने में व्यस्त है। अतः हम लोग बहुमूल्य रत्नादि के उपहार द्वारा दक्षिण प्रदेश के राज्यपाल को तुरन्त अपने वश में करके समस्त महाराष्ट्र को जीत लें।

प्रधानमन्त्री—देव के आने से पूर्व ही मैंने चाकण आदि सह्यदुर्गों को अधिकार में कर लिया है। शेष दुर्गों में से कल्याण प्रान्त पर आक्र-मण करने के लिए मैंने सैन्य-समूह प्रेषित कर दिया है। परन्तु उदयभान द्वारा रक्षित सिंहगडदुर्ग कैसे अधिकार में हो, यह अत्यधिक चिन्तनीय है।

शिवराज—(सोचकर) मंत्री के अतिरिक्त अन्य कोई भी यह कार्य संपादित करने में समर्थ नहीं है। इस समय अपने पुत्र के विवाह कार्य में व्यग्र होने के कारण प्रस्थान-हेतु उन्हें आदेश नहीं दिया जा सकता।

(उसके पश्चात् परदा हटाकर अचानक तानाजी का प्रवेश)

शिवराजः–(सविस्मयम्) अहो अमात्यः। अपि संपन्नं मङ्गलकार्यम्।

तानाजीः—देवस्यानुग्रहेणैतत्सुसंपन्नमेव। यतः स्वयमेवाम्बा निर्वाहयिष्यति विवाहोत्सवम्। तया चादिष्टोऽहमद्यैव प्रतिष्ठे सिंहगडदुर्गविजयाय। तदत्र भवतु वीतोत्सुक्यो देवः।

शिवराजः—अहो धन्योऽसि मम प्रधानवीर ! अद्य खलु—

तृणाय मत्वात्मजकौतुकक्रियां राष्ट्रैकभक्त्योद्वहता धुरं रणे।
एकान्ततो मातृनिदेशवर्तिना संपावितं दाशरथेर्यशस्त्वया ॥४

इदानीं तु हस्तगत एव मम सिंहगडदुर्गः। यतः—

एको महेशस्त्रिपुरस्य भेत्ता, हरिर्यथा दैत्यकुलस्य हन्ता।
तथा त्वमेवासि ममाग्रवीर ! न चेतरो दुर्गवरस्य जेता ॥५

शिवराज—(आश्चर्य में) अहो, मंत्रिवर ! क्या मंगल कार्य सम्पन्न हो चुका ?

तानाजी—देव की कृपा से वह सुसम्पन्न ही है। क्योंकि माताजी स्वयं ही विवाहोत्सव-कार्य सम्हालेंगी। और उन्होंने मुझे आज ही सिंहगड-दुर्ग के विजयार्थ प्रस्थान-हेतु आदेश किया है। अतः इस सम्बन्ध में देव निश्चिन्त हों।

शिवराज—ओह, मेरे प्रधानवीर ? तुम धन्य हो। आज वस्तुतः—

पुत्र के विवाह कार्य को तृण के समान मानकर राष्ट्रभक्ति के कारण रण में सेनापतित्व स्वीकार करनेवाले, माता के निर्देश का पालन करने से तुमने राम का यश प्राप्त कर लिया। ४

अब तो सिंहगडदुर्ग हस्तगत ही है। क्योंकि—

जैसे एक शंकर त्रिपुर का भेदन करनेवाले हैं, एकाकी ही इन्द्र दैत्यकुल का नाश करने वाले, उसी प्रकार हे प्रधानवीर ! तुम अकेले मेरे दुर्गों के विजेता हो। ५

तानाजी;–देव ! प्रभूणामेव प्रभावेण सर्वत्र नियोज्यानां साध्यसिद्धिः । तद्—

आक्रम्य दुर्भेद्यमरातिसैन्यं सद्यो विजेष्ये सहसाग्रदुर्गम् ।
सेनाधिपत्ये हरिणा नियुक्तो, न किं कुमारो हतवान् सुरारीन् ॥६

शिवराजः—तत्प्रतिष्ठतां मे प्रधानवीरो दुर्गविजयाय ।

तानाजीः—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देवः मोगलेशमुद्राङ्कितपत्रहस्तो दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

दूतः—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः । दक्षिणापथाधिपेन प्रणवाभिनन्दनपुरःसरं प्रेषितमेतत्सार्वभौमशासनपत्रम् । (इति पत्रमर्पयति)

तानाजी—देव, स्वामी के ही प्रभाव से सर्वत्र सेवकों की कार्य सिद्धि होती हैं । अतः—

मैं दुर्जेय शत्रुसेना पर आक्रमण करके शीघ्र ही श्रेष्ठ दुर्ग पर विजय कर लूंगा । क्या इन्द्र द्वारा सेनापति के रूप में नियुक्त कुमार कार्तिकेय ने देवताओं के शत्रुओं को मार नहीं डाला था ? वरंच मारा था ।

शिवराज—मेरे प्रधानवीर ! तो दुर्ग विजय के लिए प्रस्थान करो ।

तानाजी—जैसी देव की आज्ञा (चला जाता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव की विजय हो। मुगलसम्राट् का मुद्रांकित पत्र लिए हुए दूत द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है ।

शिवराज—प्रवेश करो उसे ।

द्वारपाल—ठीक है । (चला जाता है)

दूत—(प्रवेश कर) विजय हो महाराज । दक्षिण के राज्यपाल ने अभिनन्दन सहित सार्वभौम सम्राट् का यह पत्र भेजा है । (पत्र देता है ।)

शिवराजः—(आदाय) मन्त्रिन् ! उद्घाट्य वाचयैतत् । (इत्यर्पयति)

मन्त्री—तथा । (इति वाचयति)

निजराजनगरात्केनाऽपि साम्राज्यविद्वेषिणोपजापकेनापसारित-स्यापि साम्राज्यसपर्यानुरक्तस्यानेकसाहसविक्रमशालिनो महम्मदीयधर्म-रक्षकस्य शिवराजस्य सर्वानपराधान् मर्षयित्वा तं च राजपदेन संयोज्य तस्मै संनिहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं वितरति सार्वभौमः इति ।

शिवराजः—मन्त्रिन् ! अपूर्वः खल्वयमनुग्रहः सार्वभौमस्य दक्षिणा-पथाधिपस्य च । दूत ! त्वं तावन्निवेदय दक्षिणापथाधिपाय यदचिरेण प्रतापरावद्वितीयो मम वीरात्मज उपैष्यति तवान्तिकमिति ।

दूतः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः- मन्त्रिन् ! नायं बहुमानः किन्तु प्राणसंशयान्ता प्रतारणा । यत्—

शिवराज—(लेकर) मंत्रिन्, खोलकर इसे बाँचो । (देते हैं)

मन्त्री—अस्तु । (बाँचता है)

अपनी राजधानी से किसी साम्राज्यविरोधी फूट डालनेवाले के द्वारा बाहर निकाले हुए, साम्राज्य की सेवा में रहने की इच्छावाले, विक्रमशाली, महम्मदीय धर्म के रक्षक, शिवराज के सभी अपराधों को क्षमा करके, राजपद पर प्रतिष्ठित कर, पड़ोस के दो राज्यों का चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार उसे सम्राट् देते हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, निश्चित ही यह दक्षिण के राज्यपाल का महान् अनुग्रह है । दूत ! तुम दक्षिण के राज्यपाल को सूचित करो कि शीघ्र ही प्रतापराव के साथ मेरा वीर पुत्र उनके पास पहुँचेगा ।

दूत—ठीक है । (चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रिन्, यह बहुत बड़ा सम्मान नहीं किन्तु प्राण-संशयात्मक छल है । क्योंकि—

कृतापकारेषु परेषु दुर्मतिस्त्वकाण्डमाविष्कुरुते य आदरम् ।
संमानदाम्ना स निबध्य तान् पशून्, वधस्थलीं शौनिकवन्निनीषति ॥७

मन्त्री—देव ! इदानीमन्यतो व्यापृतेनानेन युद्धविरामार्थं पुरस्कृतोऽयं सामोपचारः । परन्त्वेतेन तव करतलोपस्थापितेव साम्राज्यसिद्धिः । यतः-
दिल्लीश्वरानुमतराजपदं पुनस्ते, स्वातन्त्र्यमेव परितः प्रकटीकरोति ।
सोऽयं तवांशहरणे प्रथितोऽधिकारस्त्वां मण्डलेशपदमर्पयति प्रशस्तम् ॥८

शिवराजः—अहो सम्यग्गृहीतं त्वया सार्वभौमशासनतत्त्वम् । तथापि नाय मवसरोऽस्माभिरुपेक्षणीयः । तद् द्वैधमाश्रित्य सद्यएव साधनीयमस्मदभीष्टम् ।

मन्त्री—सर्वथाऽभिनन्द्यते देवस्याध्यवसायः ।

शिवराजः—तत्प्रतिष्ठतां कुमारेण सह प्रतापरावो दक्षिणापथाधिपराजधानीम् । तत्र च निवसताऽनेन कर्तव्यः समन्ततोऽस्मच्चतुर्थांशसंग्रहः ।

दुष्टों द्वारा अपने शत्रु को अचानक इस प्रकार सम्मान दिया जाना उसी प्रकार है जैसे पशु को आदर सहित वध-स्थान को ले जाना । ७

मन्त्री—देव, इस समय अन्यत्र युद्ध में व्यस्त रहने के कारण सम्राट् ने यह शान्ति-नीति अपनायी है । परन्तु इस प्रकार साम्राज्यसिद्धि आपके हाथ में आ गयी । क्योंकि—

दिल्लीश्वर द्वारा आपका राजपद स्वीकार कर लेना, आपके लिए स्वाधीन होने की पूर्ण घोषणा है । और चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार आपको मण्डलेश का प्रशस्त अधिकार प्रदान कर देता है । ८

शिवराज—अहो, तुमने यह सम्राट् के आदेश का तात्पर्य ठीक ही सोचा । फिर भी हमें इस अवसर की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । कूटनीति द्वारा अपने अभीष्ट को हमें प्राप्त करना चाहिए ।

मन्त्री—देव का निर्णय सर्वथा अभिनन्दनीय है ।

शिवराज—तो, कुमार के साथ प्रतापराव को दक्षिणापथाधिप की राजधानी के लिए भेज दो । और वहाँ रहकर यह चारों ओर से चतुर्थांश संग्रह करें ।

प्रतापरावः—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—मन्त्रिन् ! गान्धारविजयानन्तरमेवाभियोक्ष्यतेऽस्मान् धूर्तो मोगलेश्वरः । तत् क्षिप्रमेव संनाहितबलैरस्माभिश्चतुर्थांश-संग्रहमिषेणाक्रम्य स्वायत्तीकर्त्तव्यः समग्रो महाराष्ट्रप्रदेशः। भवन्त्वद्यैव प्रयाणाभिमुखास्त्वदधिष्ठिता मे रणप्रवीराः। यावदहमपि करोपसंग्रहार्थं प्रतिष्ठे गुर्जरप्रदेशम् । प्रत्यागतेष्वस्मासु प्रवर्तिष्यते साम्राज्याभिषेक-महोत्सवः। तत्संभ्रियन्तां संभाराः पुरोहितपुरोगमैः कर्मसचिवैः।

मन्त्री—यथाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं दुर्गविजयनामा

नवमोऽङ्कः।

प्रतापराव—देव की जो आज्ञा। (चला जाता है)

शिवराज – मन्त्रिन् ! गान्धारविजय के पश्चात् तुरन्त धूर्त मुगल-सम्राट् हमें व्यस्त कर लेगा। अतः शीघ्र ही अपनी सशक्त सेना द्वारा चतुर्थांश संग्रह करने के बहाने से आक्रमण कर समस्त महाराष्ट्र प्रदेश को अधिकार में कर लेना चाहिए। आज हमारे रणवीर तुम्हारे सेनापतित्व में प्रस्थान कर दें। जब तक मैं कर संग्रह करने के लिए गुर्जरप्रदेश को प्रस्थान करता हूँ। मेरे वापस आ जाने के बाद साम्राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न होगा इसलिए पुरोहित आदि अन्य कर्मचारी आवश्यक सामग्री एकत्र करते रहें।

मन्त्री —जैसी देव की आज्ञा। (सभी चले जाते हैं)

दुर्गविजय नामक

नवाँ अङ्क समाप्त।

दशमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथमः—अहो बतासत्यसन्धस्य मोगलेशस्य कुटिलपाशबन्धविनिर्मुक्तेन महाराजेन पुनरपि लीलायुद्धे; स्वायत्तीकृता महाराष्ट्रभूः।

द्वितीयः—भद्र ! तथापि सिंहगडदुर्गजयेन नासीद्देवस्य परमः परितोषः।

प्रथमः अये ! कथं विजयेऽप्यपरितोष इत्युच्यते।

द्वितीयः—तद्दुर्गजयाय प्रेषितस्य तानाजीवीरस्य प्राणान्तसंकटेनोद्वेजितो देवः।

प्रथमः—कुतो विजेतुरपि प्राणसंकटम्।

द्वितीयः—भद्र ! गाढान्धकारावृते निशीथे गोधामवलम्ब्य तद्दुर्गप्राकारमासद्य केन मावलेवीरेणाधः प्रसारिताभी रज्जुभिरयं प्रवीरोऽध्यारोहयन्निजसैनिकगणम्। अथ प्रवृत्ते घोरसंग्रामे परस्परं नियुध्यमानावुदयभाणतानाजीवीरौ वीरगतिं समापद्येताम्।

दसवाँ अङ्क

(उसके बाद दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम- ओह आश्चर्य, विश्वासघाती कुटिल मुगलसम्राट् के बन्धन से स्वयं को मुक्त कर, सहज युद्ध से महाराज ने महाराष्ट्र प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

द्वितीय—भद्र ! फिर भी सिंहगडदुर्ग की विजय से देव को पूर्ण सन्तोष नहीं है।

प्रथम—अरे ! विजय होने पर भी असन्तोष, ऐसा क्यों कहते हो ?

द्वितीय- उस दुर्ग की विजय के लिए प्रेषित तानाजी वीर के प्राणान्त से देव को क्षोभ है।

प्रथम—विजेता के लिए प्राण-संकट कैसे ?

द्वितीय—भद्र, रात्रि के घोर अन्धकार में गोधा के सहारे उस दुर्ग के प्राकार पर पहुँच मावल वीर ने नीचे लटकायी रस्सी की सहायता से अपने सैनिकों को इस दुर्ग में चढ़ाया। इसके बाद घोर संग्राम में परस्पर युद्ध करते हुए उदयभाण और तानाजी दोनों वीरगति को प्राप्त हो गए।

प्रथमः—अहो स्वाम्यर्थं प्राणानुत्सृजताऽनेन खलु कृतकृत्यतां नीतं क्षात्रं जन्म ।

द्वितीयः -- अत्रान्तरे च तेनैव मार्गेणाध्यारूढेन सूर्याजीवीरेण परास्य रिपुदलं स्वविजयख्यापनाय प्रज्वालितो महानलः । तत्क्षणं तेन संजातहर्षेणापि देवेन यदा परेद्यु र्निजबालसुहृदस्तानाजीवीरस्य प्राणव्ययोदन्त आकर्णितस्तदानीमेव विषण्णवदनेन सहसोदीरितं 'हा कष्टमेकः सिंहः प्रतिपन्नः । अपरस्तु विपन्नः ।' इति ।

प्रथमः—अहो, अनेकवीरव्ययसाध्या हि साम्राज्यसिद्धिः ।

द्वितीयः—अथ किम् । ततः प्रभृति तु सर्वत्राप्रतिहतप्रसरोऽभूद्विजयध्वजो देवस्य । आबाजीवीरेण स्वायत्तीकृतः कल्याणप्रदेशः । प्रधानमन्त्रिणा च माहुलीदुर्गः । प्रतापरावेण च साल्हेरदुर्गः । एवं समन्ततो विजयरसाश्रितस्य देवस्य साम्राज्यमहोत्सवमभिनन्दितुं संप्रति समुपस्थितेन सामन्तमण्डलेन समाकुलोऽयं दुर्गराजः परमां श्रियमादधाति ।

प्रथम—अहो स्वामी के कार्य से अपने प्राणों की आहुति देकर इसने अपना क्षत्रिय जन्म सफल कर दिया ।

द्वितीय—इसी बीच उस मार्ग से ही वीर सूर्याजी ने दुर्ग पर चढ़कर रिपुदल को परास्त करके विजय सूचक अग्निज्वाल प्रज्वलित कर दिया । उससे हर्षित होकर भी देव ने जब दूसरे दिन अपने बाल सुहृद् तानाजी वीर के प्राणान्त का संवाद सुना तो दुःखी होकर सहसा कहा—'हाँ कष्ट, एक सिंह बन्दी हुआ दूसरा नष्ट हुआ ।

प्रथम—अहो, वस्तुतः अनेक वीरों की आहुति से साम्राज्यसिद्धि मिलती है ।

द्वितीय—यह सत्य है । उस समय से देव का विजयध्वज सर्वत्र फहरा उठा । आबाजी वीर ने कल्याण प्रदेश अधिकार में किया । प्रधानमंत्री ने माहुली दुर्ग और प्रतापराव ने साल्हेर दुर्ग । इस प्रकार विजय-विभूषित देव के साम्राज्यमहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चारों ओर से आए, संप्रति उपस्थित सामन्तों से पूर्ण यह दुर्गराज परम शोभा धारण कर रहा है ।

प्रथम.—देवतानुग्रहमन्तरेण, नैव सम्भवत्येतादृशं सौभाग्यम् ।

द्वितीय:—अपि च संप्राप्ताः अत्र साक्षाद्वेदमूर्तयः काशीनिवासिनो गागाभटप्रभृतयो विप्रवर्या देवस्य साम्राज्याभिषेकं संपादयितुम् ।

प्रथमः–एवं समुपार्जिता महाराजेन सकलभारतव्यापिनी यशःसमृद्धिः ।

द्वितीयः—भद्र ! जातः खलु सभाप्रवेशसमयः । यावत्तत्रोपेवः । (इति परिक्रामतः)

प्रथमः–(परितो विलोक्य) नूनमदृष्टपूर्वामिव सुषमां बिभर्ति दुर्गराजः ।

ध्वजवसनपताकामण्डिता राजमार्गाः, कुसुममुकुलमालारञ्जिता कुट्टिमाश्च ।
नवविरचितरागाऽऽलेख्यचित्रास्तराणि, दधति परमशोभां धूपितान्यङ्गनानि ।१

ध्वजेति । ध्वजैः च वसनैः च पताकाभिः च मण्डिताः अलङ्कृताः राजमार्गाः कुसुममुकुलानां पुष्पकलिकानां मालाभिः रञ्जिताः कुट्टिमाः मणिनिबद्धभूमयः नवः विरचितः निर्मितः रागः येषां तानि आलेख्यानि चित्राणि विचित्राणि चास्तराणि येषु तानि धूपितानि अङ्गनानि परमशोभां दधति धारयन्ति । मालिनीवृत्तम् । १

प्रथम—देव के अनुग्रह बिना यह सौभाग्य सम्भव नहीं ।

द्वितीय—यहाँ तक कि काशीनिवासी साक्षात् वेदमूर्ति गागाभट आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण देव का साम्राज्याभिषेक संपादित कराने के लिए आ गए हैं ।

प्रथम—इस प्रकार महाराज ने सम्पूर्ण भारत में व्याप्त होनेवाला यश प्राप्त कर लिया ।

द्वितीय—भद्र, सभा-प्रवेश का समय हो गया । वहाँ चलना चाहिए । (दोनों घूमते है) ।

प्रथम (चारों ओर देखकर) निश्चित ही यह दुर्गराज पहले न देखी गयी अपूर्व सुन्दरता को धारण कर रहा है ।

राजमार्ग सुन्दरवस्त्रों, ध्वज और पाताकाओं से शोभित है, मणि-जटित स्थान फूलों की कलियों से गूंथी मालाओं से सजे, नये-नये विविध चित्रों से चित्र-विचित्र वस्त्रों से ढंके हुए आँगन को सुगन्धित किये हुए हैं, अत्यन्त सुन्दरता धारण कर रहे हैं ।१

द्वितीयः—एवमेतद् । संप्राप्ता एते वयमभिषेकमण्डपपरिसरम् ।
पश्यात्र—

मुक्ताहिरण्मयपटारचितोपकार्या, वासोगृहाणि विपुला गजवाजिशालाः ।
कोशालयाश्च वसनाभरणान्नकोष्ठा, प्रख्यापयन्त्यनुपमामधिराजलक्ष्मीम् ॥२

प्रथमः—अप्रतिमः खल्वयं साम्राज्याभिषेकमहोत्सवोपक्रमः । यतः—

मुक्ताविद्रुमतोरणाङ्कितपुरोद्वाराणि तूर्यस्वनै-
श्चीत्कारैः करिणां मृदङ्गनिनदैरातन्वते मङ्गलम् ।
काञ्चीनूपुरकिङ्किणीक्वणितकै रम्यैर्यशोगीतिकां,
गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदाश्रुपूर्णाननाः ॥३

मुक्ताविद्रुमेति । मुक्तानां विद्रुमाणां च तोरणैः अङ्कितानि च तानि पुरो द्वाराणि अग्रद्वाराणि तूर्यस्वनैः करिणां चीत्कारैः मृदङ्गनिनदैः मङ्गलमातन्वते विस्तारयन्ति । मोदाश्रुभिः पूर्णानि आननानि यासां ताः प्रमदाः रम्यैः काञ्च्याः मेखलायाः नूपुरयोश्च किङ्किणीनां क्वणितकैः मञ्जुस्वनैः महोत्सवमुदा यशोगीतिकां गायन्ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । ३

द्वितीय—हाँ, ऐसा ही प्रतीत हो रहा है । हम लोग अभिषेकमण्डप के पास पहुँच गए हैं । इधर देखिए—

राजशिविर मोती और स्वर्ण से जटित वस्त्रों द्वारा निर्मित है, घोड़े, हाथियों के लिए विशालभवन, बड़े-बड़े प्रासाद, कोशगृह, वस्त्रगृह और अन्नागार सभी महाराज की अपार लक्ष्मी का आभास करा रहे हैं।२

प्रथम—वस्तुतः साम्राज्याभिषेक की यह तैयारी अनोखी है । क्योंकि

सामने के द्वार मोती और मणियों से खचित बन्दनवारों द्वारा सजे हैं, हाथियों के चीत्कार, तुरही की ध्वनि, मृदंग से मंगल बिखर रहा है। प्रसन्नता के आँसुओं से पूर्ण मुखवाली स्त्रियाँ नूपुर एवं मेखला का सुन्दर स्वर बिखेरती हुई यश का गान कर रही हैं । ३

द्वितीय:—न खल्वयं केवलं महोत्सव: किन्तु महाराष्ट्रियाणां स्वातन्त्र्यसूर्योदयोऽपि। (सभामण्डपं प्रविश्य) भद्र ! पश्यैष निर्वर्तित-साम्राज्याभिषेकमङ्गलो देवो मातरमभिवादयते।

चण्डांशुप्रखरातपारुणरुचिर्दूरात्परांस्तापय—
न्नासीद्यस्तपनद्युतिः परिपतन् देशान्तरं देशतः।
ज्योत्स्नासंमतमानदानपरमः पीयूषरत्नाकरः,
सोऽयं चान्द्रमसीं दधाति सुषमामाह्लादयन् स्वाः प्रजाः ॥४

चण्डेति। चण्डाश्च ते अंशवश्च तेषां प्रखरः यः आतपःतापः तेन अरुणा रुचिः कान्तिः यस्य पक्षे चण्डांशुवत् प्रखरःय आतपः प्रतापः तेन अरुणा रुचिः यस्य दूरात् परान् अन्यान् पक्षे रिपून् तापयन् संतापयन् देशतः देशान्तरं परिपतन् यः तपनद्युतिः आसीत् स अयं ज्योत्स्नया संमतः तुल्यः यः मानः तस्य दानं परमं यस्य सः पीयूषस्य अमृतस्य रत्नाकरः समुद्रः पक्षे पीयूषस्य रत्नानां च आकरः स्वाः प्रजाः आह्लादयन् चान्द्रमसीं सुषमां परमां शोभां दधाति धारयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। ४

द्वितीय—यह केवल महोत्सव ही नहीं बल्कि मराठों के स्वातंत्र्यसूर्य का उदय भी है। (सभा-मण्डप में प्रवेशकर) भद्र, देखो यह महाराज साम्राज्याभिषेक के मंगल कार्य से निवृत्त होकर माता को प्रणाम कर रहे हैं।

जो अपने प्रचण्ड तेज की किरणों से शत्रुओं को, ताप देनेवाला था ? जैसे सूर्य एक ओर से दूसरी ओर घूमकर प्रकाश विखेरता रहता है। वही अमृत के समुद्र के सदृश चन्द्रमा की सुन्दरता को धारण किये हुए, जैसे उसकी ज्योत्स्ना समस्त लोक को शीतलता प्रदान करती है, उसी प्रकार अपनी प्रजा को दान-मान द्वारा प्रसन्न कर रहा है। ४

तत्तावद्वयमप्यासनपरिग्रहं कुर्मः। (इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टः शिवराजः)

शिवराजः--अम्ब ! एष संपादितसाम्राज्याभिषेकमङ्गलो महिषी-द्वितीयः शिवराजोऽभिवादयते। (इति महिष्या सह पादयोः पतति)

राजमाता—(सानन्दाश्रु) वत्स ! चिरंजीव। वत्से ! चिरं सकल-सौभाग्यभाजनं भूयाः। दिष्ट्याद्य खलु मया प्रत्यक्षीक्रियते पूर्वानुभूतं स्वप्नदर्शनम्। यतः—

संस्थाप्य विक्रमजितं भुवि धर्मराज्यं,
वत्स ! त्वया कुलयशः प्रथितं त्रिलोक्याम्।
यच्चापि दुर्लभमनन्ततपश्च येन,
तद्वै प्रवीरजननी पदमर्पितं मे ॥५

तो हम लोग भी अपना आसन ग्रहण करें। (दोनों निकल जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त।

(उसके बाद पूर्व वर्णनानुसार शिवराज का प्रवेश)

शिवराज—माता, साम्राज्याभिषेक का मंगल कार्य संपादित करके यह शिवराज, महाराज्ञी के साथ प्रणाम करता है। (राज्ञी-सहित पैरों पर गिरता है)

राजमाता (प्रसन्नता के आँसू सहित) वत्स ! चिरजीवी बनो। वत्से ! चिरकाल तक समस्त सौभाग्यों की पात्र बनी रहो। भाग्य से आज मेरे सामने पहले देखा गया अपूर्व स्वप्न प्रत्यक्ष हो गया। क्योंकि—

अपने पराक्रम से जीतकर पृथ्वी पर धर्मराज्य की स्थापना द्वारा पुत्र तुमने कुल का यश त्रिलोक में प्रसिद्ध कर दिया। अत्यन्त कठिन तपश्चर्या से भी प्राप्त करना जो कठिन है, वह श्रेष्ठ वीर की माता का पद मुझे प्रदान किया। ५

उभौ—(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः ।

शिवराजः—अम्ब ! प्रतिपदं त्वदनुशासनवर्तिनैव मया समासादितोऽयं लोकोत्तरोत्कर्षः ।

(इति छत्रचामरधरैरुपसेवितो, रत्नसिंहासनमुपसृत्य महिष्या सहारोहति)

सभ्याः—(उत्थाय) विजयतां छत्रपतिमहाराजः । विजयतां साम्राज्ञी ।

(इति सुवर्णकुसुमानि विकिरन्ति)

(प्रधानाधिकारिणः सामन्तप्रतिनिधयश्च मणिमुक्तास्वर्णकुसुमस्रजः अर्पयन्ति)

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ—विजयतां महिषीद्वितीयश्छत्रपतिमहाराजः साम्राज्याभिषेकमङ्गलेन ।

दोनों—(विनम्रता से) आशीष से अनुगृहीत हैं ।

शिवराज—मातः ! सदा आपके आदेशानुसार चलकर ही मैंने यह लोकोत्तर उन्नति-पद को प्राप्त किया है ।

(छत्र और चामरधारी सेवकों द्वारा सेवित, राज्ञी-सहित रत्न-सिंहासन पर बैठते हैं)

सभासद—(उठकर) छत्रपति महाराज की विजय हो । साम्राज्ञी की जय हो ।

(स्वर्णफूल बिखेरते हैं)

(प्रधानअधिकारी, सामन्तों के प्रतिनिधिगण मणि, मुक्ता, स्वर्ण और फूलों की मालाएँ अर्पित करते हैं)

(नेपथ्य में)

वैतालिक—साम्राज्याभिषेक मङ्गल द्वारा महारानी-सहित छत्रपति महाराज की विजय हो ।

द्विजवरसचिवेन्द्रैर्मन्त्रतोयाभिषिक्तो, विजयपदवितानैर्दिव्यकन्याऽभिगीतः ।
रुचिरमणिकिरीटी रत्नसिंहासनस्थः विबुधपतिरिव त्वं राजसे भारतेन्द्र !॥६

(अष्टोतरशतशतघ्नीस्वनोपक्रमः)

वीणिनौ (वीणावाद्येन गायतः) (मालकोशरागेण त्रितालेन गीयते)

कृपालो ! छत्रपते ! महाराज !
भारतवर्षनरेशकुलपते ! नयसमुपार्जितदिगन्तकीर्ते ! ।
रमापते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ॥१
स्वातन्त्र्यसुरापगावतारणसुखसंपादितराष्ट्रोद्धारण ! ।
धर्मपते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ॥२

द्विजवरेति । द्विजवराः पुरोहितप्रमुखाः विप्राः सचिवेन्द्राःअमात्यप्रमुखाः क्षत्रियाः तैः मंत्रतोयैः अभिमंत्रितजलैः अभिषिक्तःविजयस्य पदानां गेयपदानां वितानैः स्वरविस्तारैः दिव्यकन्याभिः अभिगीतः रुचिरः मणिकिरीटः अस्यास्तीति धृतरुचिरमणिकिरीटः इत्यर्थः रत्नसिंहासनस्थः त्वं विबुधपतिः इव इन्द्र इव हे भारतेन्द्र ! राजसे । मालिनीवृत्तम् ।६

कृपालो इति । हे कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! भारतवर्षस्य नरेश-कुलं नृपगणः तस्य पतिः तत्संबुद्धौ । नयेन समुपार्जिता दिगन्ता कीर्तिः येन तत्संबुद्धौ । हे रमापते हे विष्णो । स्वातन्त्र्यस्य सुरापगा गङ्गा तस्याः अवतारणेन सुखेन संपादितं राष्ट्रस्य महाराष्ट्रस्य उद्धारणं मुक्तिः येन सः तत्सं० । हे धर्मपते ! हे धर्मराज्यसंस्थापक ।

अमात्य, श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा अभिमंत्रित जल से अभिषिक्त, सुन्दर कन्याओं द्वारा गाये हुए विजयगीत के स्वर-विस्तार से सुन्दर मणिकिरीट धारण किए, रत्नसिंहासन पर आसीन हे भारतेन्द्र ! तुम इन्द्र के सदृश शोभित हो रहे हो ।६ (एक सौ आठ तोपों का स्वर)

वीणावादक—(वीणावाद्य के साथ गाते हैं)
(मालकोशराग त्रिताल से गाया जाता है)

हे कृपालु छत्रपतिमहाराज ! हे रमापते ! (विष्णु के समान, अपार वैभव से युक्त) भारतवर्ष में राजाओं के स्वामी, अपनी नीतिनिपुणता से दशों दिशाओं में व्याप्त होनेवाला यश अर्जित किया है । १ हे धर्मपते ! (धर्मराज्य के संस्थापक) स्वतंत्रता रूपी गङ्गा की अवतारणा करके तुमने सुखपूर्वक राष्ट्र के उद्धार का कार्य संपादित कर दिया । २

मायापहृतनिखिलभूभारस्त्वमसि कृपानिधिशिवावतारः ।
विबुधपते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ॥३
अरिगणचक्रतिमिरहरमिहिस्त्वं विलससि महसा रणवीर—
स्त्विषांपते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ॥४
निजजनपदपुरजनाभिनन्दितदेवद्विजवरकिन्नरवन्दित ! ।
विश्वपते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ॥५

गागाभटः—दिष्ट्याऽद्य वर्धते महाराजश्चिरप्रार्थितेन साम्राज्य-श्रीविलसितेन ।

बाहुप्रतापसमुपात्तदिगन्तकीर्तिः, सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।
राजन्यमन्त्रिसचिवैः समुपासितस्त्वं साम्राज्यवैभवयुतोऽतितरां विभासि ॥७

मायया अपहृतः निखिलः भूभारः येन स त्वं कृपानिधेः शिवस्य अवतारः असि । हे विबुधपते हे महेश्वर । अरिगणचक्रमेव तिमिरं तस्य हरः स चासौ मिहिरः सूर्यश्च रणवीरः त्वं महसा क्षात्रतेजसा विलससि । हे त्विषां पते हे सूर्य । निजानि यानि जनपदपुराणि तेषां जनैः अभिनन्दित-श्चासौ देवद्विजवरकिन्नरवन्दितश्च तत्सं० हे विश्वपते ! अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

हे विबुधपते ! माया (कूटनीति) द्वारा समस्त भूमिमण्डल के भार को दूर करनेवाले कृपानिधि तुम शिव के अवतार हो । हे सूर्य ! (महत्तेज को धारण करनेवाले क्षत्रियवीर) जैसे अन्धकार को सूर्य दूर कर देता है उसी प्रकार शत्रुओं के व्यूह को चीरनेवाले हे रणवीर तुम क्षात्रतेज से विलस रहे हो । हे विश्वपते ! अपने जनपद और पुरजनों द्वारा अभिनन्दित और देवों, किन्नरों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा वन्दित होकर शोभा पा रहे हो ।

गागाभट—भाग्यवशात् चिरप्रार्थित साम्राज्यश्री विलास द्वारा महाराज बढ़ रहे हैं ।

अपने बाहु (सैनिकगणों) के प्रताप से दिगन्तव्यापिनी कीर्ति अर्जित कर, तुम साम्राज्य-वैभव से युक्त हो अत्यधिक शोभित हो रहे हो—तुम्हारे चरण सामन्त के शीश पर रखे मणिजटित मुकुटों से शोभित हैं और राजाओं, मंत्रियों एवं सचिवों द्वारा तुम सेवित हो रहे हो । ७

शिवराजः—भगवन् ! परदेवताप्रसादेन श्रीगुरुरामदासचरणानुग्रहेण चाद्य समासादितं मया साम्राज्यैश्वर्यम् । तद्—

चिरं कषायध्वजमण्डितानि राष्ट्रे सभामण्डपमन्दिराणि ।
साम्राज्यदेवस्य गुरोः समन्तात् प्रख्यापयन्त्वप्रतिमं प्रभावम् ॥८

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधिमण्डलं निर्दिश्य) एते कुत्वशाहीप्रभृति-सामन्तप्रतिनिधयो हस्त्यश्वरत्नहिरण्योपायनैर्देवस्य साम्राज्याभिषेक-महोत्सवमभिनन्दन्ति ।

शिवराजः—मन्त्रिन् ! सामन्तसाहाय्येनाद्य मयाऽनुभूयत एतन्मङ्ग-लम् । तत्सत्कृत्य तोषयैतान् महार्हवस्त्राभूषणादिभिः ।

प्रधानमन्त्री—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराजः—अथ च संभावय कोशाध्यक्षो लक्षमुद्राभिराचार्यं चतुर्विंशतिसहस्रमुद्राभिः पुरोहितं प्रत्येकं पञ्चसहस्रमुद्राभिश्चर्त्विजं महार्हवस्त्राभूषणैश्च सर्वान् द्विजोत्तमान् ।

शिवराज—भगवन्, परम देवता के प्रसाद और गुरुवर्य श्रीरामदास के चरणों के अनुग्रह से आज यह साम्राज्य-वैभव मुझे प्राप्त हुआ है। इसलिए—

राष्ट्र के समस्त भवनों और सभामण्डप को काषायध्वज से शोभित करके साम्राज्यदेवता हमारे गुरुश्रेष्ठ के अपरिमित प्रभाव को चारों ओर चिरकाल तक फैलाया जाय । ८

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधि-मण्डल की ओर संकेत कर) कुत्वशाह आदि ये सामन्त प्रतिनिधि हाथी, घोड़े, रत्न और स्वर्ण आदि उपहारों द्वारा देव के साम्राज्याभिषेक-महोत्सव का स्वागत करते हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, सामन्तों की सहायता से आज हम इस मंगल अवसर का अनुभव कर रहे हैं। अतः उसके प्रतिनिधियों को बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण प्रदान कर संतुष्ट करें ।

प्रधानमन्त्री—ठीक है । (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—और इसके बाद कोषाध्यक्ष, एक लक्ष मुद्राओं द्वारा आचार्य को, चौबीस हजार मुद्राओं से पुरोहित, पाँच हजार मुद्राओं से

कोषाध्यक्षः—तथा (इति यथादिष्टं कुरुते)

गागाभटः—भारतेन्द्र ! तव महार्हसंभावनया परितुष्टानामस्माक-)
मेतदेवास्ति परममाशास्यम् । यत्तवायम्–

स्वातन्त्र्यभावज्वलिताहवाग्नौ द्विषद्धविर्भिर्जनताप्रतर्पणैः ।
निर्वाहितो मन्त्रिपुरोहितादिभिः साम्राज्ययज्ञो नितरां समृद्ध्यताम् ॥९

शिवराजः—अथ सभाजय मम साम्राज्याधिकारपदमण्डनानष्टौ
प्रधानमन्त्रिणो महार्हरत्नवसनाभूषणैः ।

कोषाध्यक्षः—तथा (इति यथादिष्टं कुरुते)

प्रधानमन्त्री–दिष्ट्येदानीं सम्राट्पदमधिरूढं महाराजमभिनन्द्याशास्म
एव भृत्यवर्गो । यत्—

स्वातन्त्र्येति । स्वातन्त्र्यस्य भावेन भावनया ज्वलितः आहवः रणमेव
अग्निः तस्मिन् द्विषन्तः रिपवः एव हवींषि तैः जनतायाः लोकस्य प्रतर्पणैः
संतोषणैः मंत्रिपुरोहितादिभिः निर्वाहितः निर्वर्तितः साम्राज्यमेव यज्ञः
स नितरामतिशयेन समृद्धयताम् । उपजातिवृत्तम् । ९

प्रत्येक ऋत्विजों और बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषणों से सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों
को सम्मानित करें ।

कोषाध्यक्ष – ठीक । (आदेशानुसार करता है)

गागाभट्ट—भारतेन्द्र ! आपके बहुमूल्य उपहारों से सन्तुष्ट हम लोगों
की यह शुभकामना है कि तुम्हारा यह—

स्वतन्त्रता की भावना से ज्वलित रणरूपी अग्नि में शत्रुओं की आहुति,
प्रजाजन की संतुष्टि के साथ मन्त्री रूपी पुरोहितादि द्वारा सम्पादित यह
साम्राज्यरूप यज्ञ सदा, सर्वथा समृद्धि को प्राप्त हो । ९

शिवराज—अब हमारे साम्राज्याधिकार-पद के शोभा-सदृश आठ
प्रधानमन्त्रियों को बहुमूल्यरत्न, वस्त्र और आभूषणों द्वारा सम्मानित करो।

कोषाध्यक्ष—ठीक है । (आदेशानुसार करता है)

प्रधानमन्त्री—भाग्यवशात्, सम्राट् पद पर आसीन महाराज का
अभिनन्दन कर ये सेवक चाहते हैं कि—

प्रबलकुटिलविद्विषां विभेत्ता प्रतिदिनमेष तवैधतां प्रभावः ।
तपनकुलमणेः सपर्ययेदं भवतु सदा सफलं च जीवितं नः ॥१०
शिवराजः—अथ बहुमानेनं संमानयस्व मे विजययशोभागिनो वीराग्रसरान्,
हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिताः पुण्यलोकां—
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदितयशसामन्वये ये प्रसूताः ।
मत्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षाः
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम् ॥११
कोषाध्यक्षः—तथा । (इति राजशासनान्यर्पयति)
शिवराजः—मन्त्रिन् ! संभावय विदुषो विप्रवर्यान् नियतवार्षिक-वृत्तिवितरणेन । मा सीदत्वस्मिन् मम धर्मराज्ये कोऽपि स्नातको द्विजोत्तमः । यतस्तदधीन एव सद्विद्याप्रचारः ।
मन्त्री—तथा । (इति विप्रेभ्यो राजशासनान्यर्पयति।)
शिवराजः—सचिवाः ! येषां नानाधर्माणां लोकानां संग्रहार्थमनेक-

हुत्वेति । समरः रणमेव हुतवहः तस्मिन् निजदेहं हुत्वा ये पुण्यलोकं प्रस्थिताः तेषां समुदितं समन्तात् प्रथितं यशः येषां तेषां वीरोत्तमानामन्वये वंशे ये प्रसूताः जाताः, पुनः मतेः उत्कर्षेण प्रतापेन च प्रमथिताः विनाशिताः रिपवः यैः ते ये नीतिदक्षाः ते सर्वे राष्ट्रभक्ताः नृपकुलस्य उचिताः ये विभवाः तैः यथार्हं माननीयाः । स्रग्धरावृत्तम् । ११

प्रबल और कुटिल शत्रुओं का नाश करनेवाला आपका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता रहे और सूर्यवंश के मणि आपकी सेवा में हमारा जीवन सदा सुखी और सफल रहे । १०

शिवराज—विजय यशभागी श्रेष्ठ वीरों को श्रेष्ठ सम्मान प्रदान करो ।

रणभूमि में जिन लोगों ने अपने शरीर की आहुति देकर पुण्यलोक को प्राप्त किया । उन श्रेष्ठ वीरों के कुल में जो उत्पन्न हैं, जिन लोगों ने अपनी बुद्धि के प्रताप से शत्रुओं का नाश किया, जो नीति-निपुण हैं वे सभी राष्ट्रभक्त राजकुल वैभव से यथायोग्य सम्मानित किये जायें । ११

कोषाध्यक्ष—ठीक । (राज्यशासन समर्पित करता है ।)

शिवराज—मन्त्रिन् ! विद्वान् श्रेष्ठब्राह्मणों के लिए वार्षिकवृत्ति नियत कर दें । हमारे धर्मराज्य में कोई भी विद्वान् ब्राह्मण दुःखी न रहे । क्योंकि उन्हीं के अधीन सद्विद्या का प्रचार है ।

मन्त्री—ठीक । (ब्राह्मणों को राजाज्ञा प्रदान करता है)

शिवराज—सचिवगण ! जिन नानाधर्मावलम्बी प्रजाजनों के लिए

वीरबलिभिर्मया समुपार्जितमेतद्धर्मराज्यं तान् सर्वानपि वसनान्नपानादिभिः सत्कृत्यानुरञ्जयत। यतस्तदनुरागपरवशा ह्यस्माकं साम्राज्यसंपदः।

सचिवाः—तथा। (इति निष्क्रान्ताः)

प्रतीहारः–(प्रविश्य) विजयतां देवः। दिष्ट्या संप्राप्ता अत्र श्रीचरणाः।

शिवराजः—शीघ्रं प्रवेशय भगवन्तं महानुभावम्।

प्रतीहारः—तथा। (इति निष्क्रान्तः) (ततः प्रविशति श्रीरामदासः)

शिवराज—(सर्वै सहोत्थाय) एष श्रीचरणप्रसादसमुपार्जित-साम्राज्यवैभवः शिवराजोऽभिवादयते। (इति पादयोः पतति)

श्रीरामदासः—वत्स ! उत्तिष्ठ। मम वचसि सर्वथा वर्तमानस्य तव सकलमप्यभीष्टं मया तपः प्रभावात्संपादितम्। अथ किं ते भूयः उपकरवाणि।

शिवराजः—भगवदनुग्रहेण न मे किमपि भद्रमवशिष्यते। तथापी-दमस्तु भरतवाक्यम् यदस्मिन् मम भारतवर्षे—

अनेक वीरों की बलि देकर मैंने यह धर्मराज्य प्राप्त किया है, उन सबको अन्न वस्त्रादि से सन्तुष्ट रखें, उन्हें प्रसन्न करें। क्योंकि उनके अनुराग पर ही हमारे साम्राज्य की सम्पत्ति आधारित है।

सचिवगण—ठीक है। (चले जाते हैं)

प्रतीहार–(प्रवेशकर) विजय हो देव। भाग्य से श्री (गुरुश्रेष्ठ)आ गए हैं।

शिवराज—उन देव पुरुष को शीघ्र ले आओ।

प्रतीहार ठीक है। (निकल जाता है)

(उसके बाद श्रीरामदास प्रवेश करते हैं)

शिवराज–(सबके साथ उठकर) श्रीचरणों के प्रसाद से साम्राज्य वैभव को प्राप्त करनेवाला यह शिवराज आपको प्रणाम करता है।

(पैरों पर गिरता है)

श्रीरामदास वत्स ! उठो। मेरी आज्ञा का सदा पालन करनेवाले तुम्हारे सभी अभीष्टों को मैंने तप के प्रभाव से पूर्ण किया। अब तुम्हारे लिए और क्या कर दूं।

शिवराज—भगवान् के अनुग्रह से अब मेरे लिए कुछ भी कल्याण शेष नहीं है। तथापि यह भरतवाक्य रहे कि मेरे इस भारतवर्ष में—

मोदन्तां नितरां स्वकर्मनिरताः पर्याप्तकामाः प्रजा,
एधन्तां नयविक्रमाङ्कयशसो लोकप्रियाः पार्थिवाः ।
सस्यानां च समृद्धये जलमुचः सिञ्चन्तु काले रसां,
सप्ताङ्गप्रकृतिप्रकर्षरुचिरं राष्ट्रं चिरं वर्धताम् ॥१२

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

साम्राज्याभिषेकनामा

दशमोऽङ्कः ।

समाप्तमिदं छत्रपतिसाम्राज्यं नाम नाटकम् ।

मोदन्तामिति । स्वेषु कर्मसु निरताः व्यापृताः पर्याप्तकामाः प्रजाः नितरां मोदन्ताम् । नयस्य विक्रमस्य च अङ्कः चिह्नं यस्मिन् तादृशं यशः येषां ते लोकप्रियाः पार्थिवाः नृपाः एधन्तां वर्धन्ताम् । सस्यानां नवान्नानां च समृद्धये जलमुचः मेघाः काले रसां भुवं सिञ्चन्तु वृष्टिभिः आर्द्रयन्तु । सप्त अङ्गानि स्वाम्यमात्यादीनि यस्याः तस्याः प्रकृतेः प्रकर्षेण रुचिरं दीप्तं राष्ट्रं चिरं वर्धताम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । १२

प्रजाजन अपने कर्म में निरत रहें, अपने अभीष्ट की पूर्ति कर सदा सुखी, प्रसन्न रहें, लोकप्रिय राजागण अपने विक्रम और नीति-नैपुण्य से यशस्वी हो समृद्ध होते रहें । बादल समय-समय पर अन्न की समृद्धि के लिए पृथ्वी पर जल बरसते रहें—इस प्रकार सातों अंगों से पूर्ण प्रकृति के सुन्दर विकास से राष्ट्र की सदा वृद्धि हो । १२

(सभी निकल जाते हैं)

साम्राज्याभिषेक नामक

दसवाँ अङ्क समाप्त ।